प्रथम अध्याय

इतिहास, साहित्येतिहास और इतिहास-दर्शन

1.1. इतिहास :

इतिहास (इति+ह+आस), जिसका शाब्दिक अर्थ होता है 'निश्चित रूप से ऐसा हुआ होगा। इस व्याख्या के अनुसार अतीत के जिन वृत्तों को हम पूर्ण विश्वास के साथ प्रमाणित कर सकें, उन्हें इतिहास की श्रेणी में रखा जा सकता है। सामान्यतः जनसाधारण इतिहास से यही समझता है। "घटना की व्याख्या में कारण-श्रृंखला तथा परिणाम-श्रृंखला का ज्ञान आवश्यक हो जाता है। भारतीय इतिहास चिंतन का यही मूल आधार है।"[1]

इतिहास की रचना का अर्थ होता है 'इसे कहना'। इतिहासकार का प्रमुख कर्तव्य अतीत की घटनाओं के परस्पर सम्बन्ध को दिखाना और उनकी व्याख्या करना है। इस प्रकार, इतिहास अतीत में स्थित मानव समाजों के विकास का व्याख्यात्मक वर्णन है।

एक व्यापक अर्थ में इतिहास मनुष्य के उद्गम और विकास का व्यवस्थित लेखा-जोखा है। मानव जाति के जीवन की अनूठी घटनाओं और आन्दोलनों का दस्तावेज है। इतिहास कितना भी दोषपूर्ण ही सही, उसे पकड़ने का प्रयास जो एक तरह से हमेशा के लिए खो गया है।

"इतिहास मनुष्य की अपने परिवेश और साथी मनुष्यों के साथ परस्पर क्रीड़ा का नतीजा है। मनुष्य ने हमेशा अपने आप को कुछ मौलिक आवश्यकताओं के रूप में अभिव्यक्त किया है, जैसे भोजन, वस्त्र और आवास, सामाजिक और राजनैतिक संगठन, अपने परिवेश का ज्ञान और उस ज्ञान का संप्रेषण तथा

धार्मिक एवम् दार्शनिक मान्यताएँ। ये गतिविधियाँ मिलकर सार्वभौम सांस्कृतिक रूपाकृति बनाती हैं।"[2] जब लोग समान संस्थाएँ और जीवन शैली अपनाते हैं तो कह सकते हैं कि इनकी 'संस्कृति' समान होती है। समूहों के बीच मूलभूत भिन्नताएँ सारतः उनकी संस्कृतियों की भिन्नताएँ ही होती हैं। संस्कृतियाँ पूर्णतः जड़ या अलग-अलग नहीं होती, बल्कि समय के साथ-साथ बदलती हैं और अन्य संस्कृतियों के साथ लेन-देन करती हैं।

जब लोक बहुत जटिल सांस्कृतिक रूपाकृति बना लेता है जो जटिल सामाजिक संगठन पर निर्भर होती है और प्रकृति पर जिसका व्यापक नियन्त्रण होता है तो कह सकते हैं कि वे 'सभ्यता' का दर्जा पा लेती हैं। सभ्यता अपने विविध रूपों में इतिहास का विषय होती है। इतिहास के प्रति दक्ष सांस्कृतिक रवैया उसे सभ्यताओं की जीवनी बना देता है।

इतिहास मनुष्य का जीवित अतीत है। यह शताब्दियों के दौरान मनुष्य द्वारा अपने अतीत को पुनर्निर्मित, वर्णित और व्याख्यायित करने का प्रयास है। आधुनिक काल में खासकर नीबूर और रांके के समय में इसका मतलब अतीत को 'विद्धतापूर्ण तरीके से तथ्य की स्थापना, साक्ष्य की व्याख्या स्रोत के साथ व्यवहार आदि के कुछ निश्चित नियमों का पालन करते हुए' अतीत को पुनर्निर्मित करने का प्रयास हो गया है।

हिस्ट्री और इतिहास का शाब्दिक अर्थ :

इतिहास और हिस्ट्री - दो भिन्न संस्कृतियों या सांस्कृतिक प्रवाह के विशिष्ट शब्द हैं। फलतः उनकी तलवर्ती मूल चेतना में अन्तर होना चाहिए। शब्दशः तो इसका अर्थभेद है ही दृष्टिभेद से भी अर्थभेद है। हिस्ट्री का कोशगत शाब्दिक अर्थ है छानबीन, खोज अथवा अनवरत सत्य के अन्वेषण का क्रम। इस छानबीन का अर्थ है वर्तमान को समझना। वर्तमान को समझना चाहिए इसलिए की भविष्य की दिशा

निर्धारित की जा सके। 'इतिहास' का शाब्दिक अर्थ है 'ऐसा ही होता आया है।' 'आस' भूतकालिक क्रिया का बोध नहीं कराता अपितु वह पूर्ण वर्तमान काल का द्योतक इतिहास है।

परिभाषाएँ :

'इतिहास क्या है?' अपनी इस महत्वपूर्ण पुस्तक में ई.एच. कार ने यह स्पष्ट किया कि, "इतिहास अतीत तथा वर्तमान के बीच निरंतर चलने वाला संवाद है, तथ्य तथा व्याख्या के बीच एक घनिष्ठतापूर्ण सम्बन्ध है । हम इतिहास के विषय में सामान्य सिद्धांतों को बनाने के लिए बाध्य होते हैं जिसकी सहायता से अतीत का बोध होता है ।"[3]

"इतिहास का विषय व्यक्ति जीवन नहीं किन्तु समाज का जीवन है ।"[4] व्यक्ति जीवन के स्वतन्त्र होते हुए भी सामुदायिक जीवन सांख्यिकीय और संभावनात्मक नियमों से परिचालित होता है । ये नियम ही समाज विज्ञान का आधार हैं। आजकल अधिकांश इतिहासकार इतिहास को समाज-विज्ञान मानते हैं। "समाज-विज्ञान प्राकृतिक विज्ञान के अनुकरण में प्रत्यक्ष विधियों से सामान्य नियम निकालना चाहता है।"[5] जहाँ तक यह सम्भव है इस प्रकार के सामाजिक नियम इतिहास की सहायक सामग्री बन ही जायेंगे।

सामान्य जीवन में इतिहास एक स्मृति के रूप में रहता है। जब कोई अपना या किसी और का पिछला इतिहास कहता है तो वह पुरानी घटनाओं की अपनी स्मृति दुहराता है। "ऐतिहासिक ज्ञान का उदय स्मृति अथवा कल्पना से ही नहीं होता अपितु प्रमाण से और परीक्षापूर्ण होता है ।"[6] इस प्रकार ऐतिहासिक ज्ञान का प्रमाण-आश्रित आलोचनात्मक ज्ञान है । इस ज्ञान का मुख्य रूप संभावनात्मक अनुमान है। इस प्रकार इतिहास की जानकारी के तीन मूल तथ्य हैं- **1०** साक्ष्य **2०** दस्तावेज और **3०**

भौतिक अवशेष।

साक्ष्य का अर्थ है- साक्षी का वचन। सामान्यतः अर्थ होता है प्रत्यक्षदर्शी। इतिहासकार के सामने उसके मूल साक्षी विद्यमान नहीं होते। ऐसी स्थिति में प्रत्यक्षदृष्टा अथवा साक्षात्कृत का इतिहासकार के लिए यही अर्थ हो सकता है- 'विश्वसनीय रूप से ज्ञात'। उदाहरण के लिए मैगस्थनीज अथवा युवानच्वंग के विवरण ऐतिहासिक साक्ष्य की कोटि में आते हैं। क्योंकि वे अपने आप को ऐसे व्यक्तियों द्वारा लिखित बताते हैं जो कि अपनी वर्णित सामग्री की जानकारी का दावा करते हैं।

राँके से पहले इतिहास लेखन मुख्यतः पुराने इतिहासकारों, वार्ताकारों, जीवन-चरितों आदि पर आधारित होता था। "हेरोडोटस ने स्वयं घूम-घूम कर बहुत सी जानकारी इकट्ठा की थी। यदि उसकी रचना वार्ताकार की न होकर इतिहासकार की है तो वह उसके द्वारा उपयुक्त साक्ष्य के भिन्न होने के कारण उतना नहीं जितना कि उस साक्ष्य के आलोचनात्मक पूर्वक उपयोग के कारण हैं।"[7]

विश्वविख्यात इतिहासकार ई. एच. कार ने इस उदाहरण द्वारा इतिहास के तात्पर्य और उसकी समझ को परिभाषित करते हुए स्पष्ट किया है- "इतिहास का कर्तव्य न तो अतीत से प्रेम करना है और न ही अतीत से स्वयं को मुक्त कर लेना, किन्तु इस पर आधिकारिक समझ प्राप्त करके इसे (अतीत को) वर्तमान को जानने की कुंजी समझना चाहिए। जब इतिहासकार की अतीत के विषय में कल्पना वर्तमान की समस्याओं को सूक्ष्म-दृष्टि से आलोकित करती है तो महान इतिहास का लेखन होता है। इतिहास से सीखना सदा एकतरफा प्रक्रिया नहीं होती। वर्तमान को अतीत की रोशनी में देखने का अर्थ यह भी है कि अतीत को वर्तमान की रोशनी में देखा जाए। इतिहास का कार्य वर्तमान और अतीत के अंतर्सम्बन्धों के द्वारा जानकारी में वृद्धि करना है।"[8]

“इतिहास किसका होता है? व्यक्तियों के कार्यों का, राज्यों का, सामाजिक परिवर्तनों का, सांस्कृतिक परम्पराओं का अथवा सभ्यताओं का? जहाँ पूर्वयुगों में व्यक्ति को ही स्थान प्राप्त होता था। अब इतिहासकार प्राय इस बात पर एकमत हैं कि इतिहास मुख्यतया सामाजाश्रित होता है न कि व्यक्ति आश्रित।”[9] वर्तमान युग सामान्य जनता का युग कहा जाता है जिसमें कुलीनतंत्र की अपेक्षाएं कम हो जाती है। वास्तव में इतिहास संस्कृति से अनुप्रमाणित समाज का होता है।

इतिहास को किसी एक परिभाषा में बाँटना अत्यंत कठिन है क्योंकि इतिहास की धारा अनेकानेक शाखाओं में विभक्त होकर गतिशील है तथा इसके किनारे स्थिर नहीं हैं। इसके अतिरिक्त अनेक रूपात्मक इतिहास का अवलोकन एवम् अध्ययन विभिन्न दृष्टियों से होने के कारण तत्संबंधी जटिलता एवम् अस्पष्टता में अधिक वृद्धि हुई। ई. एच. कार ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ‘व्हाट इज हिस्ट्री’ में स्पष्ट किया कि जब हम इस प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश करते हैं तब जाने अनजाने समय में अपनी अवस्थिति को प्रतिध्वनित करते हैं और हमारा उत्तर उस वृहत्तर प्रश्न का एक भाग होता है कि जिस समाज में हम रहते हैं उसके बारे में हम क्या सोचते हैं। मुझें डर नहीं है कि गहराई में जाने पर यह विषय साधारण लगेगा अपितु मुझे डर इस बात का है कि इतने विशाल और महत्वपूर्ण प्रश्न को उठाने के मेरे दुस्साहस पर आपको आश्चर्य होगा। 19 वीं सदी के इतिहासकार तथ्यों की आवश्यकता पर आधिकारिक बल देते थे; इतिहास एक विज्ञान है इस दावे को प्रभावित करने की उत्सुकता में प्रत्यक्षवादियों ने इस तथ्य सम्प्रदाय को समर्थन प्रदान किया; उनका कथन था कि पहले तथ्यों की जाँच करो। उनका यह दृष्टिकोण लॉक से बर्ट्रेंड रसेल तक की अनुभववादी मुख्य दार्शनिक विचारधारा से पूरी तरह से मेल खाता था। इन्द्रियों के अनुभव की तरह तथ्य अध्ययन करने वाले पर बाहर से प्रभाव डालते हैं। और उसकी चेतना से स्वतंत्र होते हैं। इन्हें ग्रहण करने की प्रतिक्रिया निष्क्रिय होती है। आंकड़ों को प्राप्त करके वह उनके आधार पर सक्रिय होता है। अनुभववादी सम्प्रदाय के इतिहसकारों ने

तथ्य की परिभाषा इस प्रकार व्यक्त की हैं, ‘अनुभव के वे आंकड़ें जो निष्कर्ष से भिन्न होते हैं; इसे हम इतिहास का सामान्य दृष्टिकोण कह सकते हैं। इतिहास में हमें जाँचे परखे तथ्यों का एक संग्रहीत रूप मिलता है। इतिहासकार को ये तथ्य दस्तावेजों, हस्तलेखों आदि में मिलते हैं। ये सभी तथ्य मछुवारे की पटिया पर पड़ी मछलियों की तरह होते हैं। इतिहासकार उन्हें इकट्ठा करता है, घर ले जाता है, पकाता है और अपनी पसंद की शैली में परोस देता है। एंक्टन ने तथ्यों को बिना नमक मिर्च के परोस दिया था क्योंकि उसकी रूचि सादी थी। सर जार्ज क्लार्क ने भी इतिहास में ‘तथ्यों की गुठली’ से चारों ओर के विवादास्पद व्याख्या के गुदे को अलग माना है परन्तु वे ये भूल गये कि गुठली से कहीं ज्यादा काम बाहरी गुदा आता है। पहले सीधे तथ्य को अपनाइये फिर उसकी व्याख्या के दल-दल में कूद पड़िये, यही है ‘अनुभववादी तथा सामान्य ज्ञान’ के सम्प्रदाय के इतिहासकारों का अंतिम ज्ञान।’ इस पहल में कठिनाई यह है कि अतीत के सभी तथ्य ऐतिहासिक तथ्य नहीं होते और न ही इतिहासकार उन्हें तथ्य के रूप में स्वीकार करते हैं। ऐतिहासिक तथ्यों को दूसरे तथ्यों से अलगाव क्या हो सकता है? ऐतिहासिक तथ्य क्या हैं? इस पर विचार आवश्यक है। ‘सामान्य ज्ञान’ दृष्टिकोण के अनुसार कुछ मूलभूत तथ्य होते हैं जो सभी इतिहासकारों के लिए समान हैं; दूसरे शब्दों में इतिहास की रीढ़ हैं तथा कथित मूलभूत तथ्य सभी इतिहासकारों के लिए समान होते हैं। वे इतिहास का कच्चा माल ही नहीं होते अपितु इतिहासकार का कच्चा माल होते हैं। दूसरी मूल बात यह है कि इन मूलभूत तथ्यों को स्थापित करने की आवश्यकता तथ्यों के भीतर निहित होती है। अपितु इतिहासकार के पूर्वनिर्धारित निर्णय में होती है।

19 वीं सदी के तथ्यों के प्रति ये अंधश्रद्धा, दस्तावेजों के प्रति पूजा भाव के रूप में प्रतिफलित हुई है। “तथ्यों के मंदिर में दस्तावेज मूर्ति के समान स्थापित थे। दस्तावेजों में आपको कोई चीज मिलती है तो उसे ज्यौं के त्यौं ही मान लेना पड़ेगा। मगर जब इन दस्तावेजों को डिग्रियों, संधि-पत्रों, कर-पत्रों, व्यक्तिगत विवरणों का अध्ययन करते हैं तो स्पष्ट होता है कि इन दस्तावेजों का लेखक कितना और

कैसा सोचता था, घटनाओं के बारे में उसके विचार कैसे थे या उसके विचार में घटनाएँ किस रूप में घटित हुई होंगी या उन्हें लेखक के अनुसार किस रूप में घटित होना चाहिए या इनमें से किसी का कोई अर्थ नहीं होता। जब तक कि इतिहासकार इनका अध्ययन करके लेखक का तात्पर्य न समझ लें।"[10]

क्रोचे ने घोषणा की थी कि सभी इतिहास 'समसामयिक इतिहास' होते हैं। इसका अर्थ यह है कि इतिहास लेखन आवश्यक रूप से वर्तमान की आँखों से और वर्तमान की समस्याओं के प्रकाश में अतीत को देखना है और इतिहासकार का मुख्य कार्य विवरण देना नहीं अपितु मूल्यांकन करना होता है क्योंकि अगर वह मूल्यांकन न करे तो उसे कैसे पता चलेगा कि वह क्या लिखता है। प्रत्येक इतिहास विचार का इतिहास होता है। इतिहास के तथ्य हमें कभी भी शुद्ध रूप में नहीं मिलते क्योंकि शुद्ध रूप में वे न रहते हैं और न ही रह सकते हैं। वे हमेशा लेखक के मस्तिष्क से रंग कर आते हैं। इतिहासकार अपने युग के साथ अपने मानवीय अस्तित्व की शर्तों पर जुड़ा होता है। इतिहास वही है जो इतिहासकार बनाता है। मनुष्य का अपने परिवेश के साथ जो संबंध है वही इतिहासकार का अपनी विषयवस्तु से है। "इतिहासकार अपने तथ्यों का न तो बेदाम गुलाम होता है न ही निरंकुश शासक। इतिहासकार का अपने तथ्यों के साथ बराबर का दर्जा होता है।"[11] अतः इतिहासकार और उसके तथ्यों की क्रिया प्रतिक्रिया की एक अनवरत प्रक्रिया है। अतीत व वर्तमान के बीच अंतहीन संवाद है। "आप इतिहासकार की कृति को तब तक नहीं समझ सकते जब तक कि आप उसके दृष्टिकोण को न समझ लें जिसके द्वारा उसने इतिहास का अध्ययन किया है; दूसरी इतिहासकार के उस दृष्टिकोण की जड़ें उसकी ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमि में होती हैं।"[12] केवल वर्तमान के प्रकाश में ही अतीत समझने योग्य बनता है और हम अतीत के प्रकाश में ही वर्तमान को पूरी तरह से समझ सकते हैं।

अतीत के समाज को मनुष्य के लिए सुबोध बनाना और वर्तमान समाज पर उसकी पकड़ को और मजबूत करना, इतिहास का दुहरा कर्तव्य है।

रांके :

लियोपोल्ड रांके का विश्वास था कि, "इतिहास में भगवान निवास करता है, जीवित रहता है और देखा जा सकता है। प्रत्येक कार्य उसका साक्ष्य देता है, प्रत्येक क्षण उसके नाम का गुणगान करता है और उसका ऐतिहासिक अक्षण्ता उसका सबसे पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती है। राँके के अनुसार इतिहास के नेता और अभिनेता दैवी शक्तियों के वाहन होते हैं। व्यक्ति और जातियां विश्व प्रगति के उपकरण हैं। दैवी शक्तियों का आभास विचारों के द्वारा मिलता है। इन विचारों की अंतः प्रक्रिया में इतिहास रहस्य छिपा हुआ है। वे मौलिक सामग्री के अन्वेषण व विश्लेषण में बहुत ही सतर्क और कृत निश्चय थे।"[13] वे किसी भी तथ्य के प्रतिपादन के लिए लिखित सामग्री का साक्ष्य अनिवार्य समझते थे। उनकी आलोचना में वैज्ञानिकता थी तथा उनकी शैली में कलात्मकता और उनके चरित्र-चित्रण में सर्वांगीणता। उन्होंने इतिहास लेखन का जो आदर्श रूप छोड़ा वे समस्त इतिहास जगत की ललाट लिपि बन गया। राँके का प्रभाव मुख्यतया राजनीतिक इतिहास लेखन में परिलक्षित हुआ। राँके यद्यपि राजनीतिक घटनाओं के इतिहासकार थे और उन्होंने यूरोप के विभिन्न राज्यों के राष्ट्रगत इतिहास लिखे फिर भी वे इन राष्ट्रों को यूरोप के विशाल समूह के अंग समझते थे।

नीबूर :

"बथोल्ड नीबूर (1776-1831 ई.) ने रोमन इतिहास पर व्याख्यान देकर आलोचनात्मक पद्धति का नूतन चमत्कार प्रस्तुत किया था। उन्होंने प्राचीन कथानकों और आख्यानों का सूक्ष्म विश्लेषण करके तथ्यों और घटनाओं को निश्चित किया।"[14] उन्होंने अपने इतिहास सम्बन्धी मत का प्रतिपादन करते हुए लिखा, 'मैं शब्दों का विश्लेषण करता हूँ, जिस प्रकार एक शरीर शास्त्री शरीरों का विश्लेषण करता है।'

सर जान सीले :

सर जान सीले (1834-95 ई.) ब्रिटिश साम्राज्यवाद के भक्त थे। "वे राजनीति और इतिहास को पर्यायवाची समझते थे।"[15] उनका यह कथन प्रसिद्ध है कि इतिहास फूल है और राजनीति फल है। प्राचीन राजनीति इतिहास है और वर्तमान इतिहास राजनीति है।

आगस्टस कोम्टे :

आगस्टस कोम्टे की इतिहास के विषय में यह धारणा थी कि सूक्ष्म तथ्यों के निर्धारण की प्रचलित प्रवृत्ति ने इतिहास को असम्बन्द्ध घटनाओं का संग्रह मात्र बना दिया है जिसमें घटनाओं के पारस्परिक सम्बन्धों का सूत्र अस्पष्ट वर्णनों में लुप्त हो गया है।

यदि वैज्ञानिक पद्धति से सभ्यता के विभिन्न गुणों की ऐतिहासिक तुलना करनी है तो सामाजिक विकास की सामान्य पृष्ठभूमि में उनका अध्ययन करना आवश्यक है। अतः 1822 ई. में कोम्टे ने 'सामाजिक भौतिक विज्ञान' की परिभाषा का आविष्कार किया। उनका विश्वास था कि, "जिस प्रकार भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र आदि के अध्ययन से इनके नियमों का ज्ञान प्राप्त हो सकता है जिससे प्रस्तुत तथ्यों की सुसम्बद्ध व्याख्या की जा सके।"[16] तथा उनकी आगामी दिशाओं तथा प्रवृत्तियों का संकेत किया जा सके। उसी प्रकार ऐतिहासिक तथ्यों के विवेचन से भी उन आतंरिक नियमों की व्याख्या की जा सकती है जिनके द्वारा भावी गतिविधि का आभास मिल सके।

कोलिंगवुड :

विज्ञान-विरोधी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति आर. जी. कोलिंगवुड की विचारधारा में स्पष्ट हुई। कोलिंगवुड की धारणा थी कि, "ज्ञान और निर्माण का घनिष्ठ संबंध है।"[17] मनुष्य उसी वस्तु को समझ सकता है जिसे उसने बनाया है। अतः उसका मन अपने द्वारा निर्मित विचारों को ही जान सकता है, उन

वस्तुओं को नहीं जान सकता जिनके निर्माण की प्रक्रिया उसके कार्य क्षेत्र से बाहर हो। अतएव बाह्य प्राकृतिक जगत का ज्ञान भ्रांतिमूलक है और विज्ञान वास्तविक ज्ञान है। सच्चा ज्ञान विचारों का ही हो सकता है। जो मानव मन की उपज है। विचारों का क्रम इतिहास में प्रकट होता है इसलिए इतिहास ही सच्चा ज्ञान है। इतिहासकार इतिहास का अध्ययन करते हुए विगत विचारों में अपने मन की शक्तियों को विभाजित करके उनसे पूर्ण तादात्मय प्राप्त करता है। अतीत के विचार उसकी मानसिक प्रक्रिया में फिर से जीवित हो उठते हैं। इतिहास का नाटक उसके रंगमंच पर प्रारंभ हो जाता है। इस प्रकार इतिहास का अध्ययन एक आरंभिक अनुभूति है, ब्राहय तथ्यों का निरूपण नहीं है। उनकी विचारधारा में 'समस्त इतिहास विचारों का इतिहास है।' "विचारों के अतिरिक्त और कोई वस्तु इतिहास का विषय हो ही नहीं सकती। प्रत्येक विचार, जिसका लक्ष्य और दिशा निश्चित हो, इतिहास का विषय होता है।"[18] परंतु कालिंगवुड के इन विचारों से सहमत नहीं हुआ जा सकता। यह धारणा अव्यावहारिक तथा भ्रांतिमूलक और एकपक्षीय है। मनुष्य का कार्यकलाप बौद्धिक चिन्तन पर इतना अधिक निर्भर नहीं रहता जितना भावना, वासना, इच्छाशक्ति पर आधारित होता है। दूसरा यह कि प्रत्येक विचार को अपने मन में पुनर्जीवित करना कठिन भी है और अव्यावहारिक भी है।

क्रोचे :

क्रोचे विज्ञान-विरोधी दृष्टिकोण के उत्कृष्ट प्रतिनिधि थे। वे अभिव्यजंनावाद के प्रतिपादक स्वीकार किये जाते हैं। "उनके अनुसार कला व्यक्तित्व की अनुभूति और अभिव्यंजना है।"[19] वैज्ञानिक वैयक्तिक तथ्यों और घटनाओं को भी सामान्य नियमों के दृष्टिकोण से देखता है। इतिहास भी एक प्रकार की कला है, क्योंकि उसका कार्य वैयक्तिक तथ्यों का विवरण है किन्तु कलाकार जो कुछ देखता है उसका वर्णन मात्र कर देता है, इतिहासकार को यह भी विचार करना पड़ता है कि वह जो कुछ भी देखता है वह सत्य है या नहीं। "कला सम्भावय सत्य की अभिव्यक्ति है तो इतिहास वस्तु सत्य के अन्दर ही

रहती है, इसलिए इतिहास कला का ही एक पक्ष है।"[20] परंतु आज के इतिहासकारों के मध्य क्रोचे की इस विचारधारा का महत्त्व नहीं है क्योंकि इनका व्यवहारिक पक्ष निर्बल था और प्रयोगात्मक रूप नगण्य।

कार्ल मार्क्स :

भौतिकवाद को सर्वोतम और सर्वोन्नत वैज्ञानिक रूप देने का श्रेय कार्ल मार्क्स को है। मार्क्स पर अंग्रेजी औधोगिक क्रांति, फ्रेंच राजनीतिक क्रांति और जर्मन बौद्धिक क्रांति का गंभीर प्रभाव पड़ा था। नवजागरण और प्रथम विश्वयुद्ध के समय के बीच अन्य यूरोपीय चिंतकों की तरह मार्क्स और एंगेल्स ने मानव प्रगति में विश्वास जताया है, किन्तु वे दूसरों से इस मामले में भिन्न थे कि उन्होंने उत्पादन की पद्धति को प्रगति का मुख्य तत्व माना है। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के माध्यम से ही मार्क्सवाद ने इतिहास लेखन को प्रभावित किया है। इस सिद्धांत की केन्द्रीय धारणा यह है कि मानव इतिहास की समझ का सार मनुष्यों की उत्पादक गतिविधि है जो संघर्षों को जन्म देती है। जिनके माध्यम से कोई समाज विकसित होता है।

आधुनिक इतिहास लेखन पर मार्क्सवाद का प्रभाव आमजन के क्रियाकलापों पर इसके बल में देखा जा सकता है। सामाजिक प्रगति के साथ उसके प्रभाव क्षेत्र का व्यापक होना निश्चित था। "मार्क्स ने भविष्यवाणी की थी कि सामाजिक क्रांति एक ऐसे युग का सूत्रपात करेगी जिसमें जनसाधारण का आकार बढ़ेगा। इतिहास में राजनैतिक राज्य की तरह 'महान व्यक्ति' को 'महान जन' की कहानी प्रतिस्थापित कर रही है।"[21] यह विचार व्यक्त करते हुए कि भौतिक उत्पादन की पद्धतियाँ मानव जीवन के अन्य पक्षों को प्रभावित करती हैं। मार्क्सवाद ने एक संघटक सिद्धांत प्रदान किया है और अब इसे 'पूर्ण इतिहास' का प्रतीक माना गया। पूर्ण या समग्र इतिहास का अर्थ ऐसा इतिहास है जो कला, विचारों, राजनीति और अर्थशास्त्र के मध्य अंतर्संबंध पर बल देता है। अब ऐतिहासिक रूचि राजनैतिक

इतिहास अर्थात राज्यों के शासकों तथा उनकी गतिविधियों के दायरे से बाहर निकलकर जनसाधारण की अधिसंख्य आबादी की ओर उन्मुख हो गई। इस नवीन रूचि ने जो दिशाएं प्रदान की वे आर्थिक व सामाजिक थीं। जब असंख्य मजदूरों का शोषण उनसे असह्य हो गया तब उन्होंने पूंजीवाद से ऊब कर अपनी अभिव्यक्ति में सम्पूर्ण संसार में साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना में ही प्रगति का स्वप्न उन्होंने देखा। मार्क्स ने इतिहास की गति में पतन के स्वर को ढूँढ़ते हुए लिखा, "इतिहास सभी देवियों से अधिक क्रूर है, वह न केवल युद्ध में, बल्कि शांति काल के आर्थिक विकास में अगणित लाशों के ऊपर अपना विजय रथ दौड़ता चलता है और हम स्त्री-पुरुष दुर्भाग्यवश इतने नासमझ हैं कि जब तक अपने अतिशय कष्टों द्वारा प्रेरित नहीं होते, तब तक वास्तविक प्रगति के लिए कार्य करने का साहस नहीं जुटा पाते।"[22]

मेक्स वेबर :

मेक्स वेबर की धारणा थी कि धर्म और अर्थ व्यवस्था पर परस्पराश्रित हैं। परंतु इनमें से एक को सक्रिय तत्व मानकर दूसरे तत्वकार पर इसके प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है। "मेक्स वेबर ने अर्थव्यवस्था पर धर्म के प्रभाव का विशेष अध्ययन किया था। वे धर्म को विश्वासों और मान्यताओं के रूप में ग्रहण नहीं करते थे। अपितु उसकी अर्थनीति को निर्धारित करने की चेष्टा करते थे।"[23] धर्म की अर्थनीति से उनका अभिप्राय उसके उस व्यवहारिक रूप से है जो उसके अनुयायियों के चरित्र और चर्चा का निर्माण करता है। कन्फयूशियासी, हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, मुस्लमान और यहूदी धर्मों की विशिष्ट व्यवहार परम्परा और अर्थनीति है जो इनके अनुयायियों की अर्थव्यवस्था को निर्धारित करती है। कन्फयूशियासी धर्म साहित्यिक शिक्षा प्राप्त करने वाले लोगों की व्यवहार पद्धति थी और बुद्धिवाद इसका प्रमुख लक्षण था। हिन्दू धर्म संस्कृत और शिक्षित जातियों का परम्परागत आचार था और वर्ण-व्यवस्था इसका प्रमुख लक्षण थी; बौद्ध धर्म मननशील, विचरणशील और भिक्षुओं की नियमावली था

और त्याग तथा सार्वजनिकता इसके प्रमुख लक्षण थे । इस्लाम आरम्भ में विजेता वीरों का संगठन था और बाद में इस पर मननशील रहस्यवादी सूफियों का प्रभाव पड़ा । "यहूदी धर्म एक पद-दलित जाति की रीति-नीति था और ईसायत घुमक्कड़ कारीगरों द्वारा फैला था । बाद में प्रोटेस्टेन्ट सुधार से बुद्धिवाद व्यवसाय कुशलता और गणित प्रधान मनोवृत्ति का प्रचलन हुआ । इन्हीं तथ्यों से आधुनिक पूंजीवाद का जन्म हुआ ।"[24] इतिहास की धार्मिक व्याख्याओं में मेक्स वेबर का विचार सबसे महत्वपूर्ण है ।

ट्वायनबी :

1889 ई. में जन्में अर्नोल्ड जोज्फ ट्वायनबी की ख्याति उनके 12 भागों तथा 10 जिल्दों में प्रकाशित 'ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री' पर आधारित है । यह ग्रंथ इतिहास का विश्वकोष है । इसमें सम्पूर्ण मानव इतिहास को एक नवीन दर्शन और समन्वित दृष्टिकोण में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है । उनकी धारणा है कि अतीत और वर्तमान का अंतःसंबंध इतिहास की प्रक्रिया का केंद्र बिन्दु है । ट्यावनबी ने राजनीति को प्रमुखता न देकर संस्कृति और धर्म को प्रधानता दी है और उनका ध्यान विशाल सामाजिक आंदोलनों और परिवर्तनों की और आकृष्ट हुआ है । उनकी यह मान्यता है कि, "किसी समाज का विकास और पतन उसकी आंतरिक शक्ति और दुर्बलता के कारण होता है ।"[25] विश्व इतिहास का ढ़ांचा सभ्यताओं और समाजों के संपर्को से निर्मित हुआ है । समस्त विश्व का एकीकरण धर्मों का समन्वय और आर्थिक विषमताओं का निराकरण इतिहास की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं । "उनके अनुसार ऐतिहासिक अध्ययन की इकाई सभ्यता है ।"[26] सभ्यताओं के विकास में धर्म की विशिष्ट भूमिका होती है ।

कल्हण :

प्राचीन भारत में कल्हण एक अच्छे व सच्चे इतिहासकार की छवि के साथ अभिगम की दृष्टि से सर्वाधिक निकटता दर्शाते हैं और राजतरंगिनी एकमात्र ऐसी कृति है जो इतिहास के रूप में लिखी गई है । सामान्यतः प्राचीन भारतीय लेखक अतीत की घटनाओं को पूर्णतः मानवीय मानने या उन्हें किसी तिथि क्रम या काल क्रम व्यवस्था में देखने के अभ्यस्त नहीं थे । इन दोनों अवसरों पर कल्हण अधिकांशतः खरे उतरे हैं । आर. सी. मजूमदार यह टिप्पणी करते हैं कि, "राजतरंगिनी प्राचीन भारतवासियों द्वारा प्राप्त ऐतिहासिक ज्ञान की उच्चतम सीमा को दर्शाती है ।"[27]

रामकृष्णगोपाल भंडारकर : (1837–1925)

भारत के प्रथम आधुनिक स्वदेशी इतिहासकार आर. जी. भंडारकर थे । इन्होंने अपने लेखन कार्य में प्रयोग किए गए विभिन्न स्त्रोतों की गहरी छानबीन करके ऐतिहासिक सत्य और सटीक वर्णनात्मकता प्राप्त करने के सम्पूर्ण प्रयास किया है । उनका मानना था कि एक इतिहासकार में न्यायधीश जैसी कठोर निष्पक्षता होनी चाहिए । उन्होंने एक वकील की तरह जिरह करने वाले अधिवक्ता जैसी प्रवृत्ति की तीखी आलोचना की है । उनका मानना था कि एक विद्वान का लक्ष्य छोटे से छोटे सत्य का भी संधान होना चाहिए तथा तथ्यों की उपलब्धता व उसकी विश्वसनीयता को निर्धारित करने के हर संभव प्रयास करने चाहिए । किसी भी प्रचलित मान्यता व जनश्रुति को ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य नहीं मानना चाहिए जबकि यह जानने का प्रयत्न अवश्य किया जाना चाहिए कि ऐसे आख्यानों में सत्य का कोई अंश है या नहीं ।

रोमेश चन्द्र दत्त : (1848-1909)

रोमेश चन्द्र दत्त भारतीय सिविल सेवा अधिकारी, संस्कृत के विद्वान और क्लासिकल रचनाओं के गहरे जानकार थे। भारतीय मस्तिष्क को खोजने और हिंदू सामाजिक संस्थाओं को समझने के लिए दत्त मुख्य रूप से संस्कृत साहित्य पर निर्भर थे। दत्त पहले भारतीय अर्थव्यवस्था के विश्लेषक थे जिन्होंने भारत की दुर्दशा का मूल कारण कृषि सम्बन्धी समस्या को माना है। उन्होंने भूमि कर के अत्याधिक विश्लेषण पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। दत्त की आलोचना राष्ट्रीय आन्दोलन का आर्थिक मंच बन गई।

डी. डी. कौशाम्बी :

प्रोफेसर दामोदर धर्मानन्द कौशाम्बी का इतिहासवृद्धि के रूप में योगदान अनुपम है। इतिहास को (भारत में) सर्वप्रथम पूर्णतया वैज्ञानिक ढ़ंग और मार्क्सवादी दृष्टिकोण से देखने का श्रेय इस इतिहासविद से प्राप्त है। उनके चार प्रमुख ग्रन्थों और साठ लेखों ने इतिहास लेखन जगत में गंभीर हलचल उत्पन्न कर दी। ऐतिहासिक भौतिकवाद को यांत्रिक ढ़ंग से लागू करने की प्रवृत्ति को उन्होंने अस्वीकार किया। ‘इतिहास क्या है?’ कौशाम्बी का स्पष्टीकरण है कि यदि इतिहास बड़े-बड़े पागल राजाओं के नामों और भीषण युद्धों को कहते हैं तो निश्चय ही भारत का इतिहास लिखना दुसाध्य है। परंतु यदि यह जानना अधिक महत्वपूर्ण है कि किसी काल खंड में लोगों के पास हल था अथवा नहीं तो भारत का अपना इतिहास है। उन्होंने इतिहास का स्पष्टीकरण करते हुए कहा, “इतिहास उत्पादन के साधनों और सम्बन्धों में उत्तरोतर परिवर्तनों की सुव्यवस्थित ढ़ंग से प्रस्तुति का नाम है।”[28] प्रोफेसर कौशाम्बी की दृष्टि में वे ई. एच. कार से प्रभावित थे। जिसका उदहारण उन्होंने दिया था कि, ‘इतिहास का कर्तव्य न तो अतीत से प्रेम करना है और न ही अतीत से स्वयं को मुक्त कर लेना, किन्तु इस पर आधिकारिक समझ प्राप्त करके इसे (अतीत को) वर्तमान को जानने की कुंजी समझना चाहिये जब इतिहासकार की अतीत के विषय में कल्पना वर्तमान की समस्याओं को सूक्ष्म दृष्टि से आलोकित करती

है, तो महान इतिहास का लेखन हो सकता है। इतिहास से सीखना सदैव एक-तरफा प्रक्रिया नहीं होती। वर्तमान को अतीत की रोशनी में देखने का अर्थ यह भी है कि अतीत को वर्तमान की रोशनी में देखा जाए। इतिहास का कार्य वर्तमान और अतीत के अंतर्सम्बन्धों के द्वारा जानकारी में वृद्धि करता है।'

रणजीत गुहा :

सबाल्टर्न स्टडीज के नाम से पुस्तकों की एक श्रृंखला जो बीसवीं शताब्दी के अंतिम दो दशकों में प्रकाशित हुई, ने आधुनिक भारत पर इतिहास लेख की एक नई धारा को जन्म दिया। इस श्रृंखला के प्रथम खंड का संपादन करते हुए रणजीत गुहा अपना प्रतिरोध जताते हुए कहते हैं कि भारतीय राष्ट्रवाद का इतिहास लेख दो प्रकार के पक्षपातपूर्ण अभिजात्यवाद से ग्रस्त है। रणजीत गुहा दृढ़ता से कहते हैं कि अभिजात्य राजनीति के समान सामान्य जन की राजनीति का भी एक प्रभाव क्षेत्र था जिसमें सबाल्टर्न या अधीनस्थ वर्गों और समूहों के कार्यकर्ता थे जिन्होंने आबादी के अधिकांश भाग का संघटन किया हुआ था। इसलिए ये अवर इतिहास के समर्थक थे।

दुनिया के विभिन्न जनसमुदायों और विभिन्न कालों में अतीत का जिज्ञासुबोध यानि ऐतिहासिक बोध एक समान मौजूद नहीं रहा। प्राचीन यूनान और रोम व यहूदी एवं ईसाई धर्मों ने यूरोप में शक्तिशाली इतिहास-बोध विरासत में मिला है। इतिहास के प्राचीन चीनी और मध्यकालीन मुस्लिम स्कूल उन सभ्यताओं के केन्द्रीय तत्व रहे हैं। उनकी तुलना में प्राचीन व मध्यकाल में भारतीयों का इतिहास-बोध नगण्य रहा है।

पश्चिमी संस्कृति का उद्गम स्थल यूनान है। यूनानी संस्कृति का मुख्य लक्षण स्थायित्व का अन्वेषण था। अतः यूनानी चिंतन पद्धति स्थायी मूर्त और साकार तत्वों के आश्रय पर विकसित हुई। यूनानियों के अनुसार मनुष्य वही ग्रहण करता है जिसका निश्चित व साकार रूप उसे दिखाई देता है। लेकिन छटी

शताब्दी ई.पू. में यूनानी विचारधारा में एक बड़ा परिवर्तन हुआ। यूनानी मस्तिष्क, कल्पना प्रधान मस्तिष्क को छोड़कर चिंतन प्रधान होने लगा। अतः पुरोहितों, न्यायधीशों और उच्च अधिकारियों की तालिकाओं, राजाओं की वंशावलियों, संधि विग्रह के लेखों आदि के संरक्षण की सतर्कता बढ़ने लगी। आयोनिया के बहुत से लेखक नगरों, निगमों, जातियों, राजवंशों और मंदिरों की उत्पत्ति तथा परम्पराओं को सरल गद्य में लिपिबद्ध करने लगे। हेरोडोटस (इतिहास के पिता) से पहले इन्हीं के लेख इतिहास का काम करते थे। इस तरह पाश्चात्य इतिहास-दर्शन की आधारशिला यूनानी-रोमन चिंतन पर आधारित है। प्राचीन पाश्चात्य इतिहास-लेखन का उद्गम यूनान में हुआ था। यूनानी चिंतन पर विचार करते हुए दो इतिहासकार दृष्टिगोचर हुए हैं- हेरोडोटस व थ्यूसिडाइडीस। जिन्होंने इतिहास को मिथक तत्वों से अलग कर यथार्थ भूमि पर स्थापित किया। जिस इतिहास लेखन की नींव यूनानी इतिहासकारों ने रखी उसपर भवन बनाने का कार्य रोमन इतिहासकार लिवि व पोलिबियस ने किया। भारत, चीन तथा निकटपूर्व की सभ्यताएं साधारण दृष्टि से एक-दूसरे से स्वतन्त्र रूप से विकसित हुई। एक लम्बी अवधि तक विद्वानों में यह धारणा प्रचलित रही कि भारतवासियों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव था। घटनाओं के विवरण में तिथिक्रम के सही निर्वाह के प्रति उदासीनता एवं तथ्यविशेष को कल्पित एवं पौराणिक कथाओं के परिवेश में रखकर विकृत करने की प्रकृति ने इस मान्यता को आधार प्रदान किया। इन विद्वानों ने इस अवधारणा का प्रतिपादन किया कि भारतीय घटनाओं के तथ्यपरक विवरण में रूचि नहीं रखते थे। उनके अनुसार भारतीय विद्वान वर्तमान भौतिक जीवन की अपेक्षा आगामी जीवन में अधिक विश्वास रखते हैं। यह सत्य है कि इतिहास जिस रूप में आज परिभाषित होता है, उस रूप में भारतीयों ने इतिहास रचना नहीं की। भारत में परम्पराओं की सुरक्षा का प्रयास ऐतिहासिक स्मृति के रूप में नहीं किया गया। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि भारत में इतिहास उपेक्षित रहा। इस बात के प्रचूर प्रभाव उपलब्ध हैं कि 'इतिहास' को अत्यंत प्राचीनकाल से भारतीय गौरवपूर्ण स्थान प्रदान कर रहे हैं। ब्राह्मण तथा उपनिषद साहित्य में ज्ञान की इस शाखा को 'इतिहासवेद' की संज्ञा दी गई है। वैदिक साहित्य के

अध्ययन से यह भली-भांति स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय संस्कृति के इस प्रारंभिक युग में ही ऐतिहासिक साहित्य-सृजन का प्रचलन हो चुका था और किसी न किसी रूप में ऐतिहासिक कृतियों का अस्तित्व विद्यमान था।

1.2. **साहित्येतिहास** :

साहित्येतिहास का अर्थ है 'साहित्य का इतिहास' अर्थात साहित्य की विकासशील परम्परा जिसमें जन्म से लेकर अद्यतन स्थिति का क्रमबद्ध अध्ययन है। इसमें सम्पूर्ण साहित्यिक विस्तार का सर्वेक्षण, अनुशीलन तथा मूल्यांकन अपेक्षित होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने साहित्य के इतिहास ग्रन्थ के शुरू में इसको परिभाषित किया है कि, "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।"[29]

इतिहास अतीत का विवरण जरुर प्रस्तुत करता है किन्तु उसका मूल प्रयोजन वर्तमान का संगठन करना है। साहित्येतिहास में उन्हीं रचनाओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है जिनसे वर्तमान साहित्य सृजन के बोध, मानवीय मूल्यों की परम्परा तथा व्याख्या में सहायता मिलती है, यदि इतिहास का संबंध वर्तमान से न हो तो वर्तमान में उसके अध्ययन की क्या उपयोगिता है? इसलिए क्रोचे ने लिखा है, "सभी इतिहास समसामयिक इतिहास होते हैं; क्योंकि इतिहास में निबद्ध घटनाएं कितने भी सुदूर अतीत से संबंद्ध क्यों न दिखें मूलतः वे वर्तमान आवश्यकताओं और परिस्थितियों में संदर्भित होती हैं।"[30]

क्या साहित्य का इतिहास अर्थात ऐसा इतिहास लिखना संभव है जो इतिहास होने के साथ-साथ साहित्यिक भी हो? साहित्येतिहास या साहित्य का इतिहास एक विवादास्पद विद्या है। क्योंकि एक

तरफ हम आये दिन साहित्य नामांकित रचनाओं की बहुलता देखते हैं तथा वहीं दूसरी और अनेक विद्वान ऐसे भी हैं जो राजनीतिक, सामाजिक, मूर्ति या चित्रकला के इतिहास के समान साहित्येतिहास को नहीं मानते। प्रसिद्ध समीक्षक रेने वेलेक और आस्टिन वारेन ने अपनी पुस्तक 'साहित्य सिद्धांत' में लिखा है, "साहित्य के अधिकांश प्रसिद्ध इतिहास या तो सभ्यताओं के इतिहास हैं या लेखों के संग्रह हैं। इनमें से एक प्रकार के इतिहास इतिहास तो हैं पर कला के इतिहास नहीं हैं; दूसरे प्रकार के इतिहासों को इतिहास नहीं कहा जा सकता।"[31] यह बात हिंदी पर ही नहीं, जहां साहित्य के इतिहास लेखन की परिपाटी अधिक प्राचीन नहीं, लागु नहीं होती, जबकि अंग्रेजी साहित्य की भी, जिसकी इतिहास लेखन की परम्परा शताब्दी पुरानी है, यही स्थिति है। रेने वेलेक व आस्टिन वारेन ने अपनी पुस्तक 'साहित्य सिद्धांत' में 'सर्वे आफ इंगलिश लिटरेचर' के हवाले से लिखा है, "साहित्येतिहास वस्तुतः एक समीक्षा है, एक आलोचना है न कि इतिहास।"[32] इसी क्रम को अनन्त विस्तार देने के बाद भी फ्रेंच और जर्मन साहित्यिक-इतिहासों की जांच में कुछ अपवादों को छोड़कर यही निष्कर्ष सामने आते हैं। डब्ल्यु. पी. केर का तर्क है कि 'हमें साहित्य के इतिहास की आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि इसकी वस्तुएं सदा वर्तमान रहती हैं, शाश्वत रहती है, इस तरह सही माइने में उनका कोई इतिहास होता ही नहीं है।' टी. एस. इलिएट भी किसी कृति की विगतता को नहीं मानते। अगर देखा जाए तो साहित्य का कोई इतिहास नहीं होता क्योंकि यह तो वर्तमान का सर्वव्यापी अनन्त वर्तमान का ज्ञान है। "अधिकतर साहित्य के इतिहास या तो सभ्यता के इतिहास हैं या आलोचनात्मक निबंधों के संग्रह।"[33]

डॉ. रामखेलावन पाण्डेय ने कहा है, "साहित्य का इतिहास अभिव्यक्ति की सम्पन्नता का विन्यास भी है।"[34] पाश्चात्य समालोचन के विकास के साथ-साथ साहित्य के इतिहास को भी पुनर्परिभाषित किया गया है। हिन्दी के साहित्येतिहास का विभावन उससे पर्याप्त मात्रा में प्रभावित है। नलिन विलोचन शर्मा ने अपनी पुस्तक 'साहित्य का इतिहास दर्शन' में लिखा है कि, "प्रतिज्ञा यह है कि साहित्येतिहास भी अन्य

प्रकार के इतिहासों की तरह कुछ विशिष्ट लेखकों और उनकी कृतियों का इतिहास न होकर युग विशेष के लेखक समूह की कृति-समष्टि का इतिहास ही हो सकता है इस पर सिद्धांत और व्यवहार दोनों में ही ध्यान न देने के कारण साहित्यिक इतिहास ढ़ीले सूत्र में गुंथी आलोचनाओं का रूप ग्रहण करता रहा है।"[35]

डॉ. शम्भु सिंह ने अपनी कृति 'हिंदी साहित्य की सामाजिक भूमिका' में लिखा है, "वर्तमान समय में इतिहास के संबंध में विद्वानों की धारणा बहुत बदल चुकी है। उस धारणा के अनुसार इतिहास केवल घटनाओं और व्यक्तियों के जीवन वृत्त का संग्रह नहीं है न तो वह विचारधाराओं का आंकलन मात्र है। वह मानवचेतना की सक्रियता का विवेचनात्मक अभिलेख है। अतः भारतीय मानस की विविध क्रिया-प्रतिक्रिया से संबंद्ध करके ही हिंदी साहित्य के इतिहास को देखा-परखा जा सकता है।"[36]

उपरोक्त परिभाषाओं तथा मतों के आधार पर साहित्येतिहास की कठिनाईयां तथा निष्कर्ष इस तरह प्रस्तुत किए जा सकते हैं-

1॰ आरंभ से बड़े पैमाने पर एक कला के रूप में साहित्य का विकास निश्चित करने का प्रयत्न न होना।

2॰ साहित्य के बारे में पूर्वाग्रह होना कि किसी अन्य मानवीय क्रिया-कलाप की प्रासंगिक व्याख्या दिए बिना साहित्य का इतिहास लिखना संभव ही नहीं है।

3॰ साहित्यिक इतिहास में साहित्यिक कृति को केवल कालक्रम से ही समझा जा सकता है, और इसे पूरेपन में समझना काफी कठिन है।

4॰ साहित्येतिहास लेखक, विद्या शैली, भाषा परम्परा के अनुसार छोटे और बड़े समूहों में व्यवस्थित कला-कृतियों का विकास क्रम है।

5० साहित्य का विकास जैव विकास से भिन्न है, और किसी एक शाश्वत नमूने की ओर अविकल प्रगति की धारणा से इसका कोई संबंध नहीं है।

6० साहित्य का इतिहास कोरा कविवृत संग्रह नहीं है और न ही सभ्यता के विकास क्रम का आलेख है। इसका मुख्य उदेश्य निर्माणकर्ता और परिवेश के आंतरिक संबंधों का शुभारम्भ करना है।

7० साहित्येतिहास कुछ असाधारण लेखकों तथा उनकी रचनाओं का अध्ययन मात्र नहीं है किन्तु युग विशेष की समूहगत कृतियों का समन्वित अध्ययन भी है।

8० समस्त एकत्र सामग्री का प्रयोग इतिहासकार अपनी युग-दृष्टि से करता है।

9० प्रत्येक युग ऐतिहासिक तथ्यों का अपने युग के अनुकूल संगठन करता है तथा उसकी संरचनात्मक व्याख्या करता है।

10० साहित्येतिहास में एक सुनिश्चित ऐतिहासिक बोध होता है।

हिंदी साहित्येतिहास लेखन की परंपरा :

किसी भी देश का साहित्य वहां के जीवन का जीता-जागता इतिहास होता है । हिन्दी साहित्येतिहास को लिपिबद्ध करने का प्रयास 19वीं शताब्दी से पूर्व उचित रूप से नहीं हो पाया । हालांकि अलग-अलग कवियों और लेखकों द्वारा ऐसे ग्रंथों की रचना तो हुई, जैसे ‘चैरासी वैष्णवन की वार्ता’, ‘दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता’, ‘भक्तमाल’, ‘कविमाल’, ‘कालिदास हजारा’ आदि किंतु इनमें कालक्रम , सन-संवत आदि का अभाव होने के कारण इन्हें साहित्येतिहास की संज्ञा नहीं दी गई। कतिपय ग्रंथ यदि मिलते भी हैं तो, उनमें लेखक का दृष्टिकोण साहित्य के मूल्यांकन का नहीं मिलता।

कोई भी इतिहास अचानक ही अपने विकास की अंतिम सीमा को प्राप्त नहीं कर पाता, इसके लिए इतिहासकारों द्वारा सामग्री चयन, संकलन, वर्गीकरण, विश्लेषण, संश्लेषण आदि विभिन्न प्रक्रियाओं को पूरा करना पड़ता है। वस्तुतः विधिवत इतिहास लेखन के लिए कवियों की रचनाओं के संग्रह, कवियों की नामावली तथा कविवृत्त-संग्रह आदि कृतियों की आवश्यकता पड़ती है।

हिंदी साहित्येतिहास लेखन की परंपरा अनुमानतः 150 वर्ष से पुरानी है। इस परंपरा में प्रथम स्थान पर फ्रेंच विद्वान गार्सा-द-तासी को रखा जाता है तथा इनके पश्चात डॉ. ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य से सम्बंधित सामग्री को सुनियोजित करके काल-क्रमानुसार प्रस्तुत किया है। मिश्रबंधुओं ने उसे सामग्री-दृष्टि से समृद्ध किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उसे सुव्यवस्थित रूप प्रदान कर पहला वैज्ञानिक इतिहास के रूप में स्थापित किया। आचार्य शुक्ल के बाद हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अलग-अलग सांस्कृतिक स्त्रोतों के आख्यान की दृष्टि से तथा डॉ. रामकुमार वर्मा ने साहित्येतिहास के अलग-अलग पक्षों को मूल्यांकन की दृष्टि से विवेचित करने का प्रयास किया। इसके तुरंत बाद डॉ. नगेन्द्र, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भगीरथ प्रसाद मिश्र, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, बच्चन सिंह, गणपतिचंद्र गुप्त, सुमन राजे आदि रचनाकारों ने साहित्येतिहास की परंपरा को विकासोन्मुख रखा।

हिंदी साहित्येतिहास से सम्बंधित उपलब्ध सामग्री के आधार पर इतिहासकारों का परिचय इस प्रकार है-

गार्सा-द-तासी :

ग्रंथ : इस्त्वार द ल लितरेत्यूर ऐन्दुई ऐ ऐन्दुस्तानी

हिंदी साहित्येतिहास लेखन का पहला प्रयास फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी ने किया। इनके ग्रन्थ का पहला भाग 1839 ई. में तथा दूसरा 1847 ई. में प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण 1871 ई. में प्रकाशित हुआ। तासी ने अपनी इतिहास-दृष्टि तथा सामग्री की कमी तथा अपर्याप्त सूचना

के अभाव पर अपनी विवशता को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, "यद्यपि शुरू में मेरा विचार काल-क्रम ग्रहण करने का था और मैं ये बात छिपाना नहीं चाहता कि यह क्रम अधिक अच्छा रहता या कम से कम जो शीर्षक मैंनें अपने ग्रंथ को दिया है जिससे अधिक उपयोगी होता । किंतु मेरे पास अपूर्ण सूचनाएं होने के कारण उसे ग्रहण करना कठिन ही था।"[37] गार्सा द तासी का पूरा नाम 'जाजेफ एलीदोर साजेस्म वैत्यू गार्सा-द-तासी' था।

एक इतिहासकार के रूप में तासी की उपलब्धियां इतनी महत्वपूर्ण नहीं रही क्योंकि प्रथम उन्होंने कवियों का परिचय काल-क्रमानुसार न देकर अंग्रेजी वर्णक्रम के अनुसार दिया है। दूसरा उन्होंने हिंदी और उर्दू के कवियों को एक साथ प्रस्तुत कर दिया है। तीसरा उनके ग्रथ में युगीन परिस्थितियों तथा साहित्यिक विशेषताओं का भी वर्णन नहीं है। उन्होंने यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि यदि वे कालक्रम के अनुसार ग्रन्थ लिखते तो उन्हें अलग-अलग तरह के विभागों को स्थापित करना पड़ता जैसे पहले उन लेखकों को स्थान दिया जाता जो अच्छी तरह ज्ञात हैं, दूसरे में उन लेखकों को रखते जिनका काल संदेहात्मक है तथा तीसरे में उन कवियों को रखना पड़ता जिनका काल अज्ञात है। इस तरह के विभाजन को वे पाठकों की सहूलियत के नजरिए से नहीं मानते थे।

तासी के प्रसंग में साहित्य में अलग-अलग तरह की धारणाएं हैं लेकिन यूरोप से मिले हस्तलिखित ग्रंथों तथा सूचीपत्रों के आधार पर साहित्येतिहास का एक ढ़ांचा खड़ा करना; इस कठिनाई को देखते हुए तासी की यह कोशिश बहुत ही महत्वपूर्ण है। आचार्य शुक्ल ने इनके बारे में लिखा है कि, "इसी प्रकार जब जहां कहीं हिंदी का नाम लिया जाता तब तासी बड़े बुरे ढ़ंग से विरोध में कुछ न कुछ इस तरह की बातें कहता।"[38] दूसरे नजरिए से देखें तो तासी ने फ्रांस में रहते हुए ही हिन्दुस्तानी (हिंदी) साहित्य का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था तथा जिसके संबंध में वे सदा ग्रंथ तथा निबंधादि लिखते रहते थे। इन सब चीजों के बावजूद किसी भी क्षेत्र में किए आरंभिक और प्राथमिक प्रयास का महत्व उपलब्धियों की

दृष्टि से नहीं अपितु नई दिशा की ओर विकासशील होने की दृष्टि के रूप में माना जाता है तथा यह बात तासी के इस प्रयास पर भी लागू होती है।

“यूरोपियन विद्वान हिन्दुस्तानी के अंतर्गत हिंदी और उर्दू दोनों रूपों को मानते थे। तासी ‘हिन्दुस्तानी’ का प्रयोग फारसी अक्षरों में लिखित उर्दू और ‘हिंदुई’ का प्रयोग हिंदी के लिए करते हैं। ‘हिंदुई’ हिंदु शब्द से बना है और प्रायः वे इसी का प्रयोग हिन्दी के लिए करते हैं।”[39] उर्दू के प्रोफेसर होने के कारण उन्होंने इस ग्रंथ में उर्दू कवियों को ज्यादा स्थान दिया है जबकि हिंदी के कवियों को कम। इनके इस ग्रंथ के पहले भाग में कुल 738 कवि और लेखक हैं जिसमें हिंदी के मात्र 72 कवियों का वर्णन मिलता है। इसका दूसरा संस्करण तीन भागों में है जिसके पहले भाग में विस्तृत भूमिका तथा 1223 कवियों और लेखकों का वर्णन है। द्वितीय में 801 कवि और लेखक हैं।

तासी की हिंदी संबंधी प्रमुख रचनाएं -

1. इस्तवार द ल लीतिरेत्युर ऐंदुई ए ऐन्दुस्तानी

प्रथम संस्करण- 1839, 1847 (दो भागों में प्रकाशित), द्वितीय संस्करण तीन भागों में 1870-81 में निकला। इन दोनों संस्करणों के आधार पर ‘हिंदुई साहित्य का इतिहास’ नामक ग्रंथ डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने इलाहाबाद से 1953 ई. में प्रकाशित किया।

2. लेओत्युर ऐंदूस्तानी ऐल्यू उवरज (हिन्दुस्तानी लेखक): 1866 ई.

इसके अतिरिक्त तासी ने 1849 ई. में एक हिंदी हिंदुई मुंतखावात प्रकाशित किया। जिसमें हिंदी हिंदुई के उत्तम पाठों का संग्रह था जो निम्नलिखित हैं-

गद्य :

1० सिंहासन बत्तीसी की 17 वीं कहानी

2० राजनीति से दो अवतरन

3० हितोपेदेश की पांच कथाएं

4० प्रेमसागर का 55 वां अध्याय

5० गीत गोविन्दकार जयदेव का चरित

6० भक्तमाल से अवतरण

पद्य :

1० नारायणदास के भक्तकाल से पीया का चरित

2० कलियुग वर्णन

3० उषाचरित्र से 2 अवतरण

4० महाभारत के हिंदुई रूपांतर से शकुंतला का उपाख्यान

महेशदत्त शुक्लः

ग्रन्थ : 'भाषा-काव्य संग्रह'

गार्सा द तासी के पश्चात अधिकतर विद्वानों ने शिवसिंह सेंगर को इतिहास लेखन की अगली कड़ी के रूप में माना है। किंतु इन दोनों इतिहासकारों के ग्रंथों के बीच इसी कोटि की एक पुस्तक और

भी है जिसे ‘शिवसिंह सरोज’ की मुख्य प्रेरणा माना जा सकता है। शुक्ल जी ने, “भाषा काव्य-संग्रह का निर्माण संवत् 1930 (1873)ई. में हुआ और सरोज के अनुसार दो वर्ष बाद संवत् 1932 में यह छापा गया।”[40] बतलाया।

‘भाषा-काव्य संग्रह’ के आरंभ में ‘शिवसिंह सरोज’ के समान ही लगभग 120 पृष्ठों में 51 कवियों की कविताओं का संकलन लेखक द्वारा किया गया है। इसके बाद इसी क्रम में आगे कवियों पर संक्षिप्त टिप्पणियां दी हैं। परिचयात्मक टिप्पणियों में कुछ तो बहुत ही संक्षिप्त हैं जिससे मात्र कवि विशेष और उनकी कृतियों का उल्लेख ही है। जैसे लल्लु लाल के संबंध में टिप्पणी है, “ये गुजराती ब्राहमण सहस्त्र अवदीच आगरे के निवासी इन्होंने प्रेमसागर सभाविलास आदि ग्रन्थ बनाए और इनका जन्म संवत 1830 में हुआ था।”[41] जिनका परिचय अपेक्षाकृत विस्तृत भी है वे भी अधिकतर अनुश्रुतियों पर ही आधारित हैं। उनमें कवि का कोई मूल्यांकन नहीं हुआ तथा जीवनवृत्त और रचनाओं का भी सही प्रकार से उल्लेख नहीं है। “आधुनिक युग के ‘रस-चन्द्रोदय’, ‘दिग्विजय भूषण’, ‘सुंदरी तिलक’ तथा ‘भाषा-काव्य संग्रह’, शिवसिंह सेंगर के ‘सरोज’ से पूर्व रचित ग्रंथ हैं। इनमें से कुछ गौण रूप में तथा कुछ प्रमुख रूप में ‘सरोज’ के सहायक ग्रंथ हैं।”[42] शिवसिंह सेंगर ने ‘सरोज’ की भूमिका में इन ग्रथों के बारे में जिक्र भी किया है। इसमें संदेह नहीं है कि इन ग्रथों में ऐतिहासिक दृष्टि का उन्मेष नहीं हुआ, किंतु ये ग्रंथ ‘सरोज’ की परम्परा के पूर्वरूप अवश्य हैं।

महेशदत्त ने ग्रंथ में प्रयुक्त पदों की संख्या तथा विस्तार के बारे में लिखा है,

“यामे एक सहस्त्र अरू यकसढ़ हैं सब पद्य।
यह मैं जानम नाहिं कयतिक होंहि गने यदि पद्य॥”[43]

फिर भी भाषा-काव्य संग्रह का सबसे बड़ा महत्व यह है कि इससे 'सरोज' की प्रेरणा लेखक को मिली तथा उनका मार्ग-दर्शन भी किया।

शिवसिंह सेंगर:

ग्रन्थ : 'शिवसिंह सरोज'

शिवसिंह सेंगर ने पहली बार ऐतिहासिक दृष्टि से हिंदी के कवियों के जीवन-वृत्त तथा उनकी रचनाओं का अनुसंधान करने का प्रयास किया। अनेक विद्वानों ने इसे, "हिंदी में लिखा हुआ हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास"[44] कहा है पर यह भी मूलतः एक काव्य संकलन ही है। इस संग्रह में 376 पृष्ठों में 839 कवियों तथा लेखकों की रचनाओं के उदाहरण संकलित हैं और जीवन-चरित्र-खण्ड में 135 पृष्ठों में 1003 कवियों के संक्षिप्त परिचय दिए हैं। "शिवसिंह तासी के इतिहास-ग्रंथ का उपयोग नहीं कर पाए जिसके पीछे भाषा की सबसे बड़ी बाधा रही। इसके बावजूद 'सरोज' का महत्व प्राचीनता तथा परिणाम दोनों दृष्टियों से है।"[45] 'सरोज' के महत्व पर भी नलिन विलोचन शर्मा लिखते हैं कि, "जहां तक साहित्येतिहास के रूप में 'सरोज' के महत्व का प्रश्न है, यह ग्रंथ सही अर्थ में कवि-वृत संग्रह भी नहीं कहा जा सकता, साहित्यिक इतिहास तो दूर की बात है, क्योंकि कवियों के जन्मकाल के सम्बंध में जो विवरण हैं वे अत्यंत संक्षिप्त और बहुधा अनुमान पर आश्रित हैं। फिर भी इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि ग्रियर्सन ने 'मॉडर्न वर्नाकुलर लिटरेचर ऑफ़ नोर्दन हिंदुस्तान ' में सरोज को ही आधार बनाया है।"[46]

'सरोज' के संबंध में थोड़ी सी भ्रांति इस ग्रन्थ के प्रकाशन-काल को लेकर है। सबसे पहले सर जार्ज ग्रियर्सन ने इसका प्रकाशन काल "1883 ई."[47] बतलाया है इसके बाद आचार्य शुक्ल ,डॉ. रामकुमार

वर्मा और अन्य विद्वान भी इसी काल को प्रकाशन वर्ष मानते हैं। दूसरी ओर डॉ. धीरेन्द्र वर्मा और डॉ. रामलेखावन पाण्डेय, इसका प्रकाशन काल 1877 ई. मानते हैं।

समस्त त्रुटियों के बावजूद 'सरोज' हिंदी का पहला समृद्ध ग्रंथ है जिसमें हिंदी के इतने अधिक कवियों की जानकारी मिलती है। इसलिए ग्रियर्सन से लेकर आचार्य शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी तक ने इसका वर्णन किया है।

डॉ. अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन :

ग्रन्थ : द माडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ हिन्दुस्तान

'शिवसिंह सरोज' के बाद साहित्येतिहास लेखन में सबसे महत्वपूर्ण प्रयास 'द माडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ हिन्दुस्तान' है। यह ग्रंथ पहली बार सन् 1888 ई. में 'रॉयल ऐशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' के जर्नल के पहले भाग में प्रकाशित हुआ तथा अगले ही वर्ष यह प्रबंध अलग से पुस्तकाकार छपा। इस ग्रन्थ का हिंदी अनुवाद डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने 'हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास' के नाम से किया जो सन् 1957 ई. में 'हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी' से प्रकाशित है।

पुस्तक की प्रस्तावना में विनम्रतापूर्ण वे कहते हैं, "भाषा-साहित्य के उन लेखकों की सूची मात्र होने के अतिरिक्त यह ग्रंथ और कुछ होने का दावा नहीं करता, जिनका नाम मैं एकत्र कर सका हूँ जो संख्या में 952 हैं तथा जिनमें कुल 70 का ही उल्लेख गार्सा-द-तासी ने अपने 'द ला लित्येत्युर ऐंदुई ऐ हिंदुस्तानी' में इसके पहले किया गया।"[48]

ग्रियर्सन के ग्रंथ के बारे में नलिन विलोचन शर्मा लिखते हैं कि, "वह विवरणों की दृष्टि से मुख्यतः 'सरोज' पर और अंशतः तासी के ग्रंथ पर भी , अवलंबित होने के बावजूद पर्याप्त नयी सामग्री से लाभान्वित हुआ।"[49] ग्रियर्सन के इसी ग्रंथ के बारे में किशोरीलाल गुप्त लिखते हैं, "यह हिन्दी साहित्य

की नींव का वह पत्थर है, जिस पर आचार्य शुक्ल ने अपने सुप्रसिद्ध इतिहास का भव्य भवन निर्मित किया। इस इतिहास ग्रंथ का ऐतिहासिक महत्व है।"[50]

जायसी और तुलसी पर भी सर्वप्रथम स्वतंत्र लेखन ग्रियर्सन ने ही किया। उन्हीं से प्रेरित होकर श्री माताप्रसाद गुप्त ने 1931 ई. में अपना 'तुलसी विषयक' प्रथम शोध-निबंध 'हिंदुस्तानी' में प्रकाशित करवाया जिसकी हिंदी जगत में काफी प्रशंसा भी हुई। "तुलसीदास के संबंध में ग्रियर्सन ने इतना अधिक और इतना श्रद्धापूर्ण लिखा कि यदि यह कहें कि पश्चिमी जगत में तुलसी को प्रतिष्ठित करने का श्रेय उन्हीं को है, तो अन्युक्ति नहीं होगी।"[51]

ग्रियर्सन का ग्रंथ सामान्य पुस्तकों के आकार से थोड़ा बड़ा है। "यह तीन खण्डों में विभक्त किया जा सकता है।"[52] जो इस प्रकार हैं-

1॰ प्रस्तावना आदि

2॰ मूल ग्रंथ

3॰ अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड में तीन भाग; प्रस्तावना, भूमिका, शुद्धिपत्र और परिशिष्ट हैं।

द्वितीय खंड, जो मूल ग्रंथ है, 12 अध्यायों में विभक्त है।

प्रत्येक अध्याय में प्रायः तीन अंश हैं; सामान्य परिचय, प्रधान कवि परिचय और अप्रधान कवि का नाम सूचीक्रम में है।

तीसरे खंड में तीन अनुक्रमणिकाएं हैं; प्रथम में व्यक्ति नाम सूची, द्वितीय सूची में ग्रंथ सूची और तीसरी में स्थान नाम सूची वर्णानुक्रम से हैं।

साहित्येतिहास लेखन में ग्रियर्सन ने पहली बार इतिहास को कालक्रमानुसार लिखने का प्रयास किया है। उन्होंने बहुत ही स्पष्ट तरीके से तो काल विभाजन नहीं किया, पर उनका इतिहास निम्नलिखित 11 अध्यायों में विभक्त है-

1० चारण काल (700-1300 ई.)

2० पन्द्रहवीं शताब्दी का धार्मिक पुनर्जागरण

3० मलिक मोहम्मद जायसी की प्रेम - कविता

4० मुगल-दरबार

5० तुलसीदास

6० ब्रज भाषा का कृष्ण-संप्रदाय (1500-1600 ई.)

7० रीतिकाव्य (1580-1692 ई)

8० तुलसीदास के अन्य परवर्ती (1600-1700 ई.)

9० अठाहरवीं शताब्दी

10० कम्पनी के शासन में हिंदुस्तान (1800-1857 ई.)

11० महारानी विक्टोरिया के शासन में हिंदुस्तान (1857-1887 ई.)

यद्यपि ग्रियर्सन ने पहली बार हिंदी साहित्य का काल-विभाजन किया पर उनका काल विभाजन अनेक दृष्टियों से सदोष है । इस काल विभाजन का कोई निश्चित आधार न होते हुए भी यह प्रयास साहित्येतिहास में काफी महत्वपूर्ण है।

मिश्रबंधु :

ग्रंथ : मिश्रबंधु-विनोद

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना सन् 1883 ई. में हुई। सभा ने हिंदी साहित्य की विलुप्त सामग्री को ढूंढ़ने व इकट्ठा करने का कार्य व्यापक पैमाने पर शुरू किया और सन् 1900-1911 ई़ के बीच आठ जिल्दों में अपनी खोज रिपोर्ट प्रकाशित की। इस रिपोर्ट में बहुत सारे साहित्यकारों और उनकी कृतियों के सम्बंध में नयी सूचनाएं प्राप्त हुई। इस सामग्री के आधार पर मिश्रबंधुओं (सर्व श्री गणेश बिहारी मिश्र, श्याम बिहारी मिश्र और शुकदेव बिहारी मिश्र) ने सन् 1913 ई. में तीन जिल्दों में अपना 'मिश्रबंधु-विनोद' नामक ग्रंथ प्रकाशित किया। इसका चतुर्थ भाग सन 1934 ई. में प्रकाशित हुआ। "यह ग्रंथ चार भागों में प्रकाशित हुआ है जिसमें कुल 4591 कवियों की जीवनी तथा आलोचनाओं के विवरण संग्रहीत किए गए हैं।"[53]

कवि-संख्या की दृष्टि से 'मिश्रबंधु-विनोद' अभी तक का सबसे बड़ा साहित्यकोश है और सूचनाओं के संदर्भ में वह 'शिव सिंह सरोज' के समान ही बल्कि उसकी अपेक्षा कहीं अधिक हिंदी साहित्येतिहास ग्रंथो का आधार रहा है। काल-विभाजन की दृष्टि से मिश्रबंधुओं की दृष्टि अधिक पुष्ट दिखाई जान पड़ती है। डॉ. सुमन राजे ने 'विनोद' के एक प्रमुख अभाव की ओर दृष्टि करते हुए कहा है 'इसका सबसे बड़ा अभाव सामाजिक ढांचे से अलगाव है इसलिए यह साहित्य की अन्तश्चेतना को स्पष्ट करने में सफल नहीं हो सका है। इस अभाव के बावजूद उन्होंने इसके ऐतिहासिक महत्व को उपेक्षित नहीं होने दिया।'

मिश्रबंधुओं ने अपने ग्रंथ निर्माण में शिवसिंह सेंगर और डॉ. ग्रियर्सन की पुस्तकों से भी सहायता ली किंतु उस सामग्री को जांच परख कर ही स्वीकार किया। उन्होंने स्पष्ट निर्देश दिया है, "सरोज के संवतों

में गड़बड़ रह गई है। सरोज में प्रायः कविताकाल को उत्पत्तिकाल लिखा गया है।"[54] मिश्रबंधुओं ने लगभग हिंदी साहित्य के तेरह सौ वर्षों के इतिहास का काल विभाजन निम्न प्रकार से किया है-

1० पूर्वारंभिक काल (700-1343 सं.)

2० उत्तरारंभिक काल (1344-1444 सं.)

3० पूर्व माध्यमिक काल (1445-1560 सं.)

4० प्रौढ़ माध्यमिक काल (1561-1680 सं.)

5० पूर्वालंकृत काल (1681-1790 सं.)

6० उत्तरालंकृत काल (1791-1889 सं.)

7० अज्ञात काल

8० परिवर्तन काल (1890-1925 सं.)

9. वर्तमान काल (1927 सं.-)

इसमें 'अज्ञात काल' नाम कालखंड सर्वथा अनावश्यक और साहित्येतिहास में अस्वीकारणीय है। जैसा मिश्रबंधुओं ने स्वयं कहा, "अज्ञातकाल के कविगण प्रायः उत्तरालंकृत एवं परिवर्तन काल के समझ पड़ते हैं।"[55] संक्षेप में मिश्रबंधुओं ने साहित्यकारों के संबंध में ऐतिहासिक सामग्री संकलित करने की दिशा में कठिन श्रम किया है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल :

ग्रंथ : हिंदी साहित्य का इतिहास

हिंदी साहित्य इतिहास-लेखन का परिपक्व एवं प्रौढ़ रूप आचार्य शुक्ल के 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में पहली बार दृष्टिगोचर हुआ है। यह ग्रंथ मूलतः काशी नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी द्वारा प्रकाशित 'हिंदी शब्द सागर' की भूमिका के रूप में लिखा जिसे आगे थोड़े से बदलाव के बाद स्वतंत्र पुस्तक का रूप दिया गया। अपने युग की सीमित ज्ञानराशि के आधार पर हिंदी साहित्य के इतिहास को जो सफलतम रूप दिया जा सकता है उसमें आचार्य रामचंद्र शुक्ल का इतिहास ग्रन्थ उसका जीवंत उदाहरण है।

आचार्य शुक्ल ने पहली बार हिंदी साहित्य इतिहास की कारणता पर नयी दृष्टि से विचार किया जिसे वैज्ञानिक दृष्टि कह सकते हैं। शुक्ल जी ने साहित्येतिहास को लोकचित में पढ़ने का प्रयास किया है। उन्होंने जनता की चित्तवृत्तियों के परिवर्तन को ही साहित्येतिहास के परिवर्तन का कारण माना है। जिस प्रकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल का इतिहास साहित्यिक विकास की तर्कसंगत व्याख्या के कारण अत्यंत प्रौढ़ है, उसी प्रकार शिल्प की दृष्टि से भी अत्यंत उत्कृष्ट है। उनके द्वारा किया गया कालविभाजन भी कुछ परिवर्तनों के बाद अभी तक मान्यता में है।

डॉ. सुमन राजे ने लिखा है, "शुक्ल जी का वर्गीकरण कालजयी सिद्ध हुआ है। सर्वप्रथम उन्होंने किसी पुष्ट आधार पर विभाजन किया है तथा उसके कारण भी प्रस्तुत किए हैं।"[56]

आचार्य शुक्ल ने स्वयं स्वीकार किया है कि इतिहास के लेखन में उन्होंने मुख्यतः पाँच स्त्रोतों से सहायता ली जो इस प्रकार हैं, "**क.** मिश्रबंधु विनोद **ख.** नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट **ग.** श्यामसुंदर दास की 'हिंदी कोविद-रत्नमाला **घ.** रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संपादित 'कविता- कौमुदी और **ड.** वियोगी हरि का 'ब्रज माधुर सार।"[57]

हिंदी भाषा का आविर्भाव उन्होंने लगभग सांतवी शताब्दी से मानते हुए भी हिंदी साहित्य का आरम्भ विक्रम सं. 1050 से माना तथा हिंदी साहित्य के सम्पूर्ण इतिहास को चार काल-खण्डों में विभक्त किया है जो इस प्रकार है-

हिंदी साहित्य (काल विभाजन)

आदिकाल	पूर्व मध्यकाल	उत्तर मध्यकाल	आधुनिक काल
(वीरगाथा काल)	(भक्तिकाल)	(रीतिकाल)	(गद्य काल)
(सं 1050-1375)	(स. 1375-1700)	(सं. 1700-1900)	(सं. 1900-1984)

निर्गुण काव्यधारा   सगुण काव्यधारा

ज्ञानमार्गी   प्रेममार्गी   रामभक्ति   कृष्णभक्ति

इतिहास-लेखन की परंपरा में आचार्य शुक्ल का महत्व अक्षुण्ण रहेगा, इसमें कोई संदेह नहीं।

बाबू श्यामसुंदर दास :

ग्रन्थ : हिंदी भाषा और साहित्य

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास-ग्रन्थ के प्रकाशन वर्ष के ठीक एक वर्ष बाद 1930 ई. में श्यामसुंदर दास की 'हिंदी भाषा और साहित्य' शीर्षक नमक पुस्तक साहित्य में सामने आई। 'हिंदी शब्दसागर' की भूमिका के रूप में हिंदी में भाषा और साहित्य का अलग-अलग इतिहास लिखने की योजना बनाई गई। "भाषा का इतिहास लिखने का भार बाबू साहब पर था तथा साहित्य का शुक्ल जी पर। इतिहास के अंत में नाम देने के प्रश्न को लेकर कुछ मतभेद हो गया । अतः बाबू साहब ने स्वयं

साहित्य का इतिहास लिखने का निश्चय किया और सन् 1930 में वह बड़ी सज-धज से प्रकाशित हुआ।”[58] इस ग्रंथ का संशोधित संस्करण 1944 ई.में प्रकाशित हुआ, जिसमें कुछ बदलाव के पश्चात साहित्य और भाषा के इतिहास के अंश अलग-अलग कर दिए गए।

आचार्य शुक्ल साहित्य को कला मानने के पक्ष में नहीं थे जबकि श्यामसुंदर दास ने पाश्चात्य लेखकों के मतों के आधार पर सन् 1923 ई. में ही ‘साहित्य- लोचन’ में काव्य को ललित-कलाओं के अंतर्गत स्थान दिया। श्यामसुंदर दास ने आचार्य शुक्ल के समान ही हिंदी साहित्येतिहास को चार कालखण्डों में बांटा है परंतु उसमें दो छोटे अंतर हम देख सकते हैं-

1。 आचार्य रामचंद्र शुक्ल वीरगाथा की समाप्ति स. 1375 में मानते हैं जबकि वहीं श्यामसुन्दरदास उसे स. 1400 तक बतलाते नजर आते हैं।

2。 श्यामसुंदर दास ने हिंदी साहित्य के आधुनिक काल को गद्य काल की बजाय ‘नवीन विकास का युग’ कहा है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी :

ग्रन्थ : हिंदी साहित्य की भूमिका

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के एक दशक बाद हजारीप्रसाद द्विवेदी साहित्येतिहास लेखन में आए। उनका यह ग्रंथ क्रम व पद्धति की दृष्टि से इतिहास रूप में प्रस्तुत न होकर उसमें प्रस्तुत अलग-अलग स्वतंत्र लेखों में कुछ ऐसे तथ्यों तथा निष्कर्षों को भली-भांति ज्ञात करते हुए हिंदी साहित्येतिहास लेखन के लिए नई दृष्टि, नई सामग्री व नई व्याख्या प्रदान करता है। इस ग्रंथ का प्रकाशन 1940 ई. में हुआ। विश्वभारती में अध्यापन करते समय द्विवेदी जी ने वहां के हिंदी ना पढ़ने वाले छात्रों तथा जिज्ञासुओं के

सामने हिंदी भाषा और साहित्य से सम्बंधी कुछ व्याख्यान दिए थे, जिनका संशोधित और संपादित रूप ही उनका यह ग्रन्थ है।

आचार्य द्विवेदी पहले ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने शुक्ल जी की अनेक धारणाओं और स्थापनाओं को चुनौती दी तथा अपने तर्क के साथ एक अलग दृष्टिकोण से साहित्येतिहास को देखा। "जहां आचार्य शुक्ल की ऐतिहासिक दृष्टि युग की परिस्थितियों को प्रमुखता प्रदान करती थी वहां आचार्य द्विवेदी ने परंपरा का महत्व प्रतिष्ठित करते हुए उन धारणाओं को खंडित किया जो युगीन प्रभाव के एकांगी दृष्टिकोण पर आधारित थी।"[59] आचार्य द्विवेदी ने साहित्येतिहास में प्रचलित अनेक भ्रांतियों का खंडन किया और मूल्यांकन के लिए एक अलग व्यापक मानवतावादी दृष्टि अपनाई, जिसमें अतीत के बारे में सूचित करते हुए भविष्य के निर्माण की चेतना भी दिखाई देती है।

डॉ. रामकुमार वर्मा :

ग्रंथ : हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

आचार्य द्विवेदी के साथ ही डॉ. रामकुमार वर्मा साहित्य के इतिहास-लेखन में आए थे जिनकी 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' शीर्षक पुस्तक सन् 1938 में प्रकाशित हुई।

डॉ. वर्मा ने आचार्य शुक्ल के काल-विभाजन को ही थोड़े आंशिक सुधार के साथ स्वीकार करते हुए उसका प्रस्तावित विभाजन इस प्रकार किया है-

"1。 संधिकाल (सं. 700-1000)

2。 चारणकाल (सं. 1000-1575)

3。 भक्तिकाल (सं. 1375-1700)

4。 रीतिकाल (सं. 1700-1900)

5。 आधुनिक काल (सं. 1900 से अब तक)"[60]

उन्होंने सम्पूर्ण ग्रंथ को सात प्रकरणों में विभक्त कर आचार्य शुक्ल के वर्गीकरण का ही अनुसरण किया है । इतना अवश्य है कि युगों व धाराओं के नामकरण में किंचित परिवर्तन करके उन्हें सरल रूप दे दिया है; यथा निर्गुण ज्ञानमार्गी शाखा को 'संत काव्य' तथा निर्गुण प्रेममार्गी शाखा के स्थान पर 'प्रेमकाव्य' का प्रयोग किया है।

सिद्ध कवियों की भाषा का विकास डॉ. वर्मा अर्धमागधी अपभ्रंश से मानते हैं, जबकि अन्य विद्वानों ने इन सिद्ध कवियों के निवास स्थान के आधार पर इनके काव्य की भाषा को मागधी अपभ्रंश माना है। डॉ. वर्मा के मतों में संधिकाल को लेकर अन्तर्विरोध दिखता है जब वे इसकी सीमा को एक स्थान पर वि. सं. 750 से 1000 तक बतलाते हैं और दूसरे स्थान पर वि. सं. 1200 तक।

अपनी शैली की इसी सरलता व प्रवाह पूर्णता के कारण ही यह ग्रंथ लोकप्रिय हो पाया है तथा पाठकों को थोड़ी असुविधा इस ग्रन्थ को लेकर इसलिए भी रहती है क्योंकि यह भक्तिकाल तक ही सीमित है, इसका शेष भाग अभी तक प्रकाशित नहीं हो पाया है।

उपरोक्त ग्रंथो के अतिरिक्त आचार्य रामचंद्र शुक्ल युगीन अन्य ग्रंथों में, "रमाशंकर 'रसाल' का 'हिंदी साहित्य का इतिहास' ,गौरी शंकर सत्येंद्र का 'साहित्य की झांकी' , राहुल सांकृत्यायन की 'पुरातत्व निबंधावली' , इन्द्रनाथ मदान का 'माडर्न हिंदी लिटरेचर' मोतीलाल मेनारिया का 'राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा' व हीरालाल जैन का 'जैन साहित्य की पूर्व पीठिका और अभ्युत्थान ।"[61] आदि ग्रंथ उल्लेखनीय हैं।

हिंदी साहित्य इतिहास लेखन में काफी सहायक ग्रन्थ भी हैं जिनसे इतिहासकारों को काफी मदद मिली है । अनेक कवियों ने अपने ग्रंथों में पूर्ववर्ती कवियों का उल्लेख किया है तथा अपनी रचनाओं में स्वदेश-वर्णन के साथ-साथ रचना-काल भी प्रस्तुत किये हैं । उदाहरण के लिए नाभादास की रचना 'भक्तमाल' में अनेक भक्तों तथा कवियों का वर्णन हुआ है। इसी तरह गोकुलनाथ द्वारा कृत 'वार्ता' (84 & 252 वैष्णव की वार्ता) में दीक्षित वैष्णवों की रचनाएँ तथा उनके जीवन-चरित्र का वर्णन मिलता है। इस वार्ता में लेखक ने वैष्णवों के नाम के साथ उनकी जाति का उल्लेख भी किया है । जैसे, "एक ब्राह्मण बंगाले को/हरिदास बनिया/ एक कुम्हार/ छज्जो ब्राह्मणी/ पाथो गुजरी/ एक धोबी/एक वैष्णव विरक्त/ एक वेश्या की छोरी ।"[62] इन ग्रंथों में तथ्यों का जिक्र इतना नहीं है जितना प्रसंगों का हुआ है। लेकिन साहित्येतिहास में जो अभाव स्त्री-लेखन का दिखता है वो इन 'वार्ताओं' में देखने को नहीं मिलता । इस ग्रन्थ में काफी महिलाओं का जिक्र वार्ताओं तथा प्रसंगों में हुआ है । परन्तु इन ग्रंथों को व्यक्तिगत प्रयासों से ही ग्रहण किया जा सकता है । वे साहित्य के सम्पूर्ण रूप की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित नहीं करते इसलिए उन्हें साहित्येतिहास भी नहीं कहा जा सकता । इसके अतिरिक्त भी हम देखते हैं कि इन ग्रन्थों में कवियों का वर्णन धार्मिक भावना से प्रेरित होकर किया है ना कि उनके व्यक्तित्व तथा कवित्व के आधार पर । इस शैली के कारण साहित्य की प्रवृत्ति, प्रगति और विचारों का परिचय नहीं हो पाता । इन ग्रन्थों के अलावा बाबा वेनीमाधवदास द्वारा कृत 'गोसाई चरित' (1630 ई.), ध्रुवदास कृत 'भक्तनामावली' (1641 ई.), भारतेंदु कृत 'उत्तरार्द्ध भक्तमाल' (1877 ई.), राधाचरण गोस्वामी कृत 'नवभक्तमाल' आदि से इतिहास लेखन के लिए महत्वपूर्ण तथ्य ज्ञात होते हैं। भले ही इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर प्रश्न उठता रहा हो लेकिन साहित्येतिहास में इनका काफी योगदान रहा है।

1.3. इतिहास-दर्शन :

आरम्भ में इतिहास-लेखन इतिहासकारों ने महत्वपूर्ण घटनाओं तथा कृत्यों के आधार पर अपने पूर्वजों के कामों को स्थायित्व देने के लिए लिखा। उन्होंने अतीत की सभी घटनाओं को इतिहास मान लिया, किन्तु अधिकतर घटनाओं के पीछे आदमी के मस्तिष्क की भूमिका निर्णायक होती है। जब इतिहासकार क्रिया-कलापों के परिवेश में अतीत में जो घटा है उसके अंतस्थल में जाकर मनुष्य मस्तिष्क की प्रक्रिया को जानने की कोशिश करता है तो इतिहास-दर्शन का रूप ग्रहण कर लेता है। "दर्शन एक मानसिक प्रक्रिया है, इसे अनंत वाद-विवाद का युद्ध स्थल कहा गया है।"[63] इतिहास के वाद-विवाद को सुलझाने के लिए दार्शनिक इतिहासकारों ने अलग-अलग सिद्धांतों को अपनाया। परिणामस्वरूप इतिहास का रूप गूढ़ दर्शन हो गया। घटनाओं के पीछे स्थापित मनुष्य मस्तिष्क की प्रक्रिया ने इतिहास को और भी विवादास्पद बना दिया। दर्शन; सत्य की बौद्धिक अभिव्यक्ति है जबकि इतिहास-दर्शन मनुष्य की आत्मा के सन्तुष्टीकरण का प्रयत्न होता है। "विज्ञान बाह्य जगत तथा दर्शन अंतर्विश्व का अध्ययन है।"[64]

अर्थ एवं स्वरूप :

"कोलिंगवुड के अनुसार वाल्तेयर को इतिहास दर्शन का जनक कहा जा सकता है।"[65] जबकि कुछ इतिहासकार 'हीगल' को इसका जनक कहते हैं क्योंकि इन्होंने ही इतिहास के संबंध में दर्शन का व्यवहार किया। हीगल के अनुसार, "इतिहास-दर्शन का अर्थ इतिहास संबंधी चिंतनयुक्त विचारों के अतिरिक्त कुछ नहीं है।"[66] लेकिन प्रो. वाल्स ने इतिहास-दर्शन की खोज का श्रेय इटालियन दार्शनिक विको (1680-1744) को दिया है। "हर्डर 1784 में अपनी रचना (आइडिया फॉर फिलोसफी ऑफ़ हिस्ट्री ऑफ़ मैनकाइंड) द्वारा इतिहास-दर्शन को प्रकाश में लाया तथा हीगल ने अपनी कृति (लेक्चर्स ओन फिलोसफी ऑफ़ हिस्ट्री) के माध्यम से गूढ़ विषय के रूप में समाज के सामने प्रस्तुत किया।"[67]

हीगल के बाद इसके अर्थ में थोड़ा अंतर आता गया है। "वाल्तेयर के इतिहास-दर्शन का अभिप्राय इतिहास का विश्लेषणात्मक अथवा वैज्ञानिक अध्ययन है।"[68]

वाल्तेयर का अभिप्राय इतिहास के वैज्ञानिक अथवा विश्लेषणात्मक अध्ययन से है। "इतिहास चिंतन एक प्रकार की विधि है जिसमें इतिहासकार अतीत की घटनाओं की पुनरावृत्ति की अपेक्षा स्वयं के विषय में चिंतन करता है।"[69] "इतिहास-दर्शन से हीगल का अभिप्राय विश्व इतिहास से है।"[70] काम्टे जैसे सापेक्षवादी इतिहासकारों का तात्पर्य अतीत में जो घटित हुआ है उसके माध्यम से इतिहास में सामान्य नियमों को प्रमाण देते हुए सिद्ध करना है। "इन दार्शनिक इतिहासकारों की अवधारणा के अनुसार इतिहास-दर्शन का उद्देश्य स्वयं का चिंतन, विश्व इतिहास तथा इतिहास के सामान्य नियमों से है। इसे इतिहास-दर्शन की संज्ञा दी जा सकती है।"[71]

इतिहास-दर्शन के संबंध में कोलिंगवुड के विचार अन्य दार्शनिकों से अलग हैं। उनके अनुसार, "इतिहास-दर्शन अतीत और इतिहासकार के मस्तिष्क का पारस्परिक सामंजस्य है।"[72] अतीत के वातावरण में इतिहासकार के मानसिक प्रकरण या चिंतन को इतिहास-दर्शन कह सकते हैं। अन्य शब्दों में कहें तो अतीत में घटी घटना के संबंध में इतिहासकार की मानसिक अध्ययन या खोज और घटना के विकास में उसके परिणाम को इतिहास-दर्शन कहा जा सकता है।

घटनाओं में एक घटना को देखना मात्र भी इतिहास-दर्शन है। "जबकि दर्शन इतिहास के प्रमाण्य अर्थ और वास्तविकता को निश्चित करने का दावा करता है।"[73] इतिहास के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न प्रमाण्य का नहीं बल्कि सामर्थ्य का है। इतिहास उसी का होता है जो सफल हो जाता है। इतिहास-दर्शन से तात्पर्य अतीत में घटी हुई घटना में स्थापित मानसिक प्रक्रिया या विचार को भविष्य और वर्तमान में प्रतिरोपित करना मात्र भी है।

इतिहास-दर्शन 'वाल्श' के अनुसार एक प्रकार का ज्ञान (ज्ञान के सिद्धांत रूप में) है । "इतिहास दार्शनिकों का प्रमुख कार्य वैज्ञानिक विश्लेषण के माध्यम से ऐतिहासिक घटना का बोधगम्य है ।"[74] ऐतिहासिक ज्ञान की प्रक्रिया प्रामाणिक तत्वों की प्रक्रिया है । वह सिर्फ कल्पना न होकर निश्चित प्रमाणांनुसंधान है, उसका मूल सत्त अनुभवमूलक संभावना है और अंतर्बोध परख या बुद्धि विवेक के द्वारा निर्णयन है । "इतिहास ज्ञान न विशेष विषयक प्रत्यक्ष है और न सामान्य विषयक अनुमान उसे विशेष विषयक निर्णय कहा जा सकता है ।"[75]

कोलिंगवुड ने इस तर्क को स्वीकार करते हुए माना है कि इतिहास को मानसिक प्रक्रिया मानने से यह तात्पर्य नहीं है कि इतिहास मनोविज्ञान है । "ऐतिहासिक ज्ञान एक चिंतन की प्रक्रिया है । दार्शनिक ज्ञान पर आधारित प्रक्रिया का अध्ययन करता है ।"[76] "कोलिंगवुड ने सभी इतिहास को विचार का इतिहास माना है ।"[77]

संघर्षों से ऐतिहासिक प्रक्रिया निरंतर बढ़ती रहती है । इसी गतिशीलता की वजह से सभी युगों में समाज के स्वरूप में बदलाव आना स्वाभाविक है । दासता, सामंतवाद, प्रजातान्त्रिक शासन प्रणाली का उद्भव एवं विकास, निरंकुश शासन, समाज एवं इतिहास की गतिशीलता का सूचक है । "इतिहास-दर्शन अनिवार्यतः चेतना की इतिहास स्वरूपी प्रक्रिया की एक अवस्था है । इतिहास में अतीत अनुचिंतन है । इस प्रकार इतिहास दर्शन किसी विशेष समाज अथवा ऐतिहासिक युग के चित्त की क्रियात्मक छवि होता है ।"[78]

समय के अनुसार इतिहास लगातार बदलता रहता है इसलिए इतिहास-दर्शन को भी बदलते रहना होगा । इतिहास और दर्शन की तल्लीनता का कारण बतलाते हुए क्रोचे ने कहा है कि, "दार्शनिक के प्रकथन, लक्षण या संस्थान का आविर्भाव एक निश्चित व्यक्ति के मन में देशकाल के एक निश्चित बिंदु पर निश्चित परिस्थितियों के अधीन है । प्रकृति ऐतिहासिक है, क्योंकि प्रकृति विज्ञान ऐतिहासिक परिस्थितियों के

अधीन है।"[79] "इस प्रकार दर्शन भी ऐतिहासिक है, क्योंकि दार्शनिक चिंतन ऐतिहासिक परिस्थितियों के अधीन है।"[80]

इतिहास-दर्शन ऐतिहासिक घटनाओं के जरिए सत्यम्, शिवम, सुंदरम की खोज करता है। वह सत्य जो वर्तमानकालीन मानवीय समाज के लिए हितकारी हो। मनुष्य के कल्याण के लिए ऐतिहासिक तथ्यों का रूप सुंदर होता है। जो तथ्य सामाजिक मूल्यों के आधार पर समाज के लिए कल्याणकारी होते हैं प्रत्येक युग का दार्शनिक इतिहासकार उन्हीं तथ्यों पर प्रकाश डालता है। निष्कर्षतः इतिहास-दर्शन में सत्यम्, शिवम, सुंदरम की खोज होती है। कोलिंगवुड ने कहा है कि, "प्रत्येक दार्शनिक का अपना दर्शन होता है। वह अपने ढ़ंग से काल और परिस्थितियों के संदर्भ में घटना विशेष पर चिंतन करता है तथा समाधान ढूंढ़ता है।"[81]

डिल्थे, क्रोचे, रिकर्ट तथा बोमांके ने स्वीकार किया है कि, "इतिहास एक ज्ञान है तो इसका स्वरूप दार्शनिक होना चाहिए।"[82] इतिहास-दर्शन की अपनी एक उपयोगिता है। इतिहास हमें खुद को समझने में मदद करता है। "ऐतिहासिक अध्ययन वस्तुतः आत्मगवेषणा की प्रक्रिया है जिसके परिणामस्वरूप अत्यधिक आत्मबोध से मनुष्य अपने वर्तमानकालिक जीवन को सुचारू रूप से नियंत्रित करता है।"[83] कोलिंगवुड ने विचार के बारे में लिखा है कि, "प्रत्येक विचार का स्वरूप ऐतिहासिक होता है।"[84]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि इतिहास-दर्शन को अलग-अलग दार्शनिकों और इतिहासकारों ने भिन्न-भिन्न रूपों में समझकर उसका विवेचन तथा विश्लेषण किया है। निश्चित ही है कि इतिहास-दर्शन का स्वरूप भले जो हो लेकिन उसका सम्बन्ध इतिहास तथा इसकी समस्याओं से ही है। या यूँ कहें कि इतिहास-दर्शन अपने वास्तविक रूप में 'इतिहास क्या है?' नामक प्रश्न के विभिन्न पक्षों का उत्तर है।

इतिहास-दर्शन के स्वरूप को जानने पहचानने के बाद यह कहा जा सकता है कि जैसे प्रत्येक विचार दार्शनिक विचार नहीं होता वैसे ही इतिहास से संबंधी सभी परिकल्पनाओं का ऐतिहासिक तथ्यों द्वारा निगमित तथा सही होना अत्यंत आवश्यक है। धर्मेन्द्र गोयल के शब्दों में, "इतिहास-दर्शन का अभिप्राय उस प्रकार की परिकल्पना से है जो प्रमाणिक इतिहास द्वारा पुष्ट तथ्यात्मक घटनाओं की नींव पर आधारित हो।"[85] इतिहास-दर्शन संक्षेपत: वह दार्शनिक व्याख्या है जो इतिहास की ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है। अतः इसको इस प्रकार भी परिभाषित किया जा सकता है कि इतिहास-दर्शन, इतिहास की गति, विकास, तथा लक्ष्य संबंधी तथ्यों पर आधारित एवं वैज्ञानिक परिकल्पना है।

इतिहास-दर्शन एवं इतिहास का अयोन्य संबंध :

इतिहास-दर्शन तथा इतिहास के आपसी अंतर्संबंध के स्पष्टीकरण की विशेष आवश्यकता इसलिए भी है कि कुछ दार्शनिकों ने इतिहास-दर्शन का संबंध अध्यात्म एवं लोकोत्तर सत्य से स्थापित करने का प्रयत्न किया है। उनके विचार अनुसार इस विषय का संबंध सिर्फ दर्शन से है,इतिहास से नहीं। ऐसे इस विषय में पाइपर ने लिखा है, "इतिहास दर्शन के अध्ययन की विषय-सामग्री इतिहास की विषय-सामग्री से भिन्न है।"[86] पहली बात तो यह है कि इतिहास-दर्शन का संबंध जीवन की सम्पूर्णता तथा उसके उद्देश्य एवं मूल्यों से है ऐतिहासिक यथार्थ से नहीं। दूसरा यह कि इतिहास-दर्शन के लिए दार्शनिक की दृष्टि एवं परिकल्पना महत्वपूर्ण है जबकि इतिहास के लिए ऐतिहासिक घटनाएँ तथा तथ्य ज्यादा महत्व रखते हैं। एल्वन विजेरी के कथन अनुसार, "इतिहास दर्शन का विषय इतिहासकार की तुलना में दार्शनिकों के लिए महत्व रखता है।"[87]

उपरोक्त धारणा को मानने वाले विचारक इतिहास दर्शन को परिकल्पित ज्ञान तथा इसे धर्म दर्शन का रूप देते हैं। "वे जीवन का अंतिम लक्ष्य इतिहास से मुक्ति मानते हैं अथवा इतिहास एवं समय के अंत में विश्वास करते हैं।"[88] इन सभी विचारों का इतिहास-दर्शन में कोई खास मूल्य नहीं होता क्योंकि यह एक

ऐसा ज्ञान है जो वस्तुजगत के ऐतिहासिक तथ्यों और घटनाओं से ही संभव है। इस विषय में यह कहना बिल्कुल सार्थक है कि, "इतिहास-दर्शन जो इतिहास की आत्मा अथवा सारतत्व है, ऐतिहासिक घटनाओं द्वारा निगमित होना चाहिए।"[89] इसकी मौजूदगी इतिहास पर निर्भर है और इसका निश्चित रूप मानव इतिहास की वैज्ञानिक खोज से स्पष्ट होता है। इतिहास, इतिहास-दर्शन का पूरक नहीं है बल्कि उसका मूल स्त्रोत भी है।

जिस तरह कुछ दार्शनिक इतिहास-दर्शन का महत्त्व इतिहास के लिए स्वीकार नहीं करते उसी तरह कुछ महान इतिहासकार भी इतिहास को दर्शन से अलग या मुक्त रखने पर बल देते हैं। रान्के के अनुसार इतिहासकार का मुख्य कर्तव्य ऐतिहासिक तथ्यों का अनुसंधान करना है। यह उनका असाधारण गुण माना गया कि, "उन्होंने इतिहास को दर्शन से मुक्त किया तथा बड़े स्वाभिमान से यह घोषणा की कि इतिहास आत्मनिर्भर हो सकता है।"[90] सर चालर्स ओमन नामक प्रसिद्ध इतिहासकार इतिहास का दर्शन भी होता है, ऐसे विचार से ही घृणा करते थे। इनके अनुसार दार्शनिक इतिहास के शत्रु हैं, "जो विचित्र तथा जटिल ऐतिहासिक क्रियाकलाप में कोई पूर्व निर्धारित तथा तर्कसंगत लक्ष्य एवं उद्देश्य में विश्वास रखते हैं।"[91] इसमें भी कोई शक नहीं कि इतिहास को अपने हिसाब से परिभाषित करना इतिहास के लिए हानिकारक सिद्ध होता है। दार्शनिक विवेचन की कमी के कारण उन्नत इतिहास लेखन संभव नहीं। इतिहास से संबंधी किसी भी तरह के दृष्टिकोण के बिना इतिहास लेखन केवल तथ्यों के एकत्रीकरण तक ही सीमित हो जाता है। इतिहास-दर्शन के माध्यम से ही इतिहास सुसंबद्ध रूप को प्राप्त करता है।

आधुनिक समय में जब इतिहास को उचित व्याख्या के अभाव में अर्थरहित समझा जाने लगता है तो इतिहास तथा इतिहास-दर्शन का निश्चयपूर्वक एक दूसरे के पारस्परिक संबंध को घनिष्ट मान लिया जाता है। इन दोनों का अस्तित्व एक दूसरे पर टिका होता है। इतिहासदर्शन इतिहास सम्मत तथ्यों के बिना कोरी कल्पना की तरह है। लुईस गाटस्चाक का मानना है कि, "जिस इतिहासकार के पास दार्शनिक

सिद्धांत नहीं है, उसके पास ऐतिहासिक परिवर्तन अथवा निरंतरता को मापने की कोई कसौटी नहीं है। इसलिए वह विकास, ह्रास, उतार-चढ़ाव, अभिवृद्धि-गतिरोध, अपक्षय का मूल्यांकन नहीं करता।"[92] कम शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इतिहास और इतिहास-दर्शन का अंतःसंबंध अटूट है तथा इनके संबंध विच्छेद के विषय में सोचना ही हास्यास्पद है।

इतिहास-दर्शन को लेकर अनेक दार्शनिकों के मत निम्न प्रकार से हैं-

विको :

विको इटली का एक महान दार्शनिक इतिहासकार था। इतिहास के संबंध में विको का मत था कि, "इतिहास का ज्ञान प्रकृति के ज्ञान से भिन्न है।"[93] इनके 'प्रिसिपी दि उना स्यान्जा नूबा' तथा 'सेकोंदा स्यान्जा नूबा' नामक ग्रंथ इतिहास-दर्शन के आकर ग्रंथ हैं। इन्होंने देकार्त दर्शन का विरोध किया क्योंकि इनका मानना था कि सत्य कोई निरपेक्ष भाव नहीं है, इसका सम्बन्ध मनुष्य मस्तिष्क से है। मस्तिष्क को जो ठीक लगता है वह उसे सत्य मान लेता है चाहे वह वास्तविकता से भले ही कितनी ही दूर हो। जिस दृष्टिकोण से उन्होंने विचार किया उससे वे इसी निष्कर्ष पर पहुंचे कि मानव मस्तिष्क उन्हीं तथ्यों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है जो उसकी सृष्टि हो। विको के अनुसार इतिहास का सम्बन्ध कोरे अतीत से ना होकर वर्तमान के संविधान से है। इनके दर्शन के बारे में कहा जाता है कि इनकी भाषा जटिल तथा अस्पष्ट होने के साथ-साथ धार्मिक रूप में परिबद्ध थी। भगवान में अटूट श्रद्धा होने के कारण इन्होंने देकार्त दर्शन का जो खंडन किया उससे अठारवीं शती के विचारक इनसे रुष्ट और क्षुब्ध हो गए थे।

कांट :

जर्मन के दार्शनिक कांट जीवन भर चिंतन में मग्न रहे। "1740 से जब उन्हें दर्शन में रूचि पैदा हुई, 1761 तक उन्होंने लाइपनित्स और वोल्फ के दर्शन की गवेषणा की और 1760 से 1770 तक ह्यूम

आदि अंग्रेजी के संशयवादियों के विचारों में पैठ लगाई ।"[94] उनके अनुसार, "ब्राह्य प्रगति उन आंतरिक शक्तियों की कलेवर मात्र होती है जो निश्चित नियम के अनुसार मानव जगत में कार्यशील रहती है ।"[95] कांट का दृष्टिकोण ऐतिहासिक था तथा उनके ग्रन्थों में भी ऐतिहासिक विकास का सूत्र निरंतर चलता रहता था। उनके शब्दों में किसी भी वस्तु के अलग-अलग स्वरूपों के ऐतिहासिक परिवर्तन की खोज ही वास्तविक दर्शन है। कांट ने ह्यूम आदि की तरह ही हेतुवाद को ग्रहण किया, "उनके मतानुसार प्रत्यक्ष जगत का हेतुवाद रहस्यवाद अज्ञात शक्तियों की क्रीड़ा नहीं होती, वरन नियमबद्ध घटना-चक्र की गति का पर्याय होता है ।"[96]

हीगल :

"प्रो. वाल्श के शब्दों में हीगेल को परिकल्पनात्मक दर्शन का संस्थापक माना जाता है ।"[97] हेरदर ने जिस नवीन इतिहास-दर्शन का सूत्रपात 1784 में किया उसकी चरम सीमा हमें हीगल के यहाँ देखने को मिलती है । जार्ज विल्हेल्म फ्रीडरिख हीगल (1770-1831) को जर्मनी के प्रसिद्ध विचारकों तथा इतिहासकारों में उच्च स्थान प्राप्त है । उनके इतिहास-दर्शन पर दिए हुए व्याख्यान 'फिलोजोफी देयर गेशिश्ते' नामक शीर्षक से प्रकाशित हैं। उनके इतिहास के आध्यात्मिक रूप के सन्दर्भ में अपने मत दिए हैं कि, "इतिहास-दर्शन केवल एक मानव-प्रक्रिया ही नहीं है, वरन एक समस्त विश्व की प्रक्रिया है जिसके द्वारा विश्व-प्रकृति आध्यात्मिक स्तर पर पहुँच कर आत्मचेतना में परिणत हो उठती है ।"[98] उनकी दर्शन के संदर्भ में कुछ निजी विशेषताएं भी हैं। वे इतिहास और प्रकृति की समानता और एकता को स्वीकार नहीं करते। उनका मत है कि प्रकृति में चीजें चक्रात्मक होती हैं जैसे सूरज का रोज निकलना और अस्त होना, ऋतुओं का आना और जाना आदि जबकि इतिहास में ऐसा नहीं है क्योंकि वहां चीजें चक्रात्मक ना होकर रेखात्मक होती हैं। "अतः इतिहास मानवता की संपूर्ण प्रगति का वृंतात है, बर्बरता से सभ्यता तक समस्त विकास का कथानक है ।"[99]

हीगले के अनुसार इतिहास केवल विचारों के विकास से ही सम्बन्ध रखता है। जैसे किसी घटना या क्रांति आदि को समझने के लिए उनके पात्रों की विचारधारा को जानना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि इसे जाने बिना हम उनके आंतरिक महत्व को नहीं समझ सकते। "हीगल के इतिहास-दर्शन को तार्किक विचारों का एक सुंदर समन्वय कहा जा सकता है।"[100]

स्पेंगलर तथा टवायन्बी :

अर्नाल्ड जोजफ ट्वायन्बी का जन्म लंदन में 1881 ई. में हुआ। इन्होंने अपने जीवन में कई बार विश्व भ्रमण किया। इनकी प्रमुख कृतियों में 'ग्रीक हिस्टोरिकल थाट', दि वेस्टरन क्वश्चन इन टर्की एंड ग्रीक', 'ए जर्नी टू चाइना', ए हिस्टोरियन अप्रोच टू रिलिजन', 'डेमोक्रेसी इन एन एटोमिक एज' आदि प्रसिद्ध हैं। उन्होंने इतिहास की ईकाई राष्ट्र न मानकर एक विस्तृत क्षेत्र को माना है जिसे इन्होंने 'सभ्यता' नाम दिया। सभ्यता के बारे में इनके मत हैं, " सभ्यता से मेरा अभिप्राय; ऐतिहासिक अध्ययन का वह लघुतम भाग है जिस पर अपने देश के इतिहास को समझने की चेष्टा करते समय मनुष्य की दृष्टि पहुंचती है।"[101] टवायनबी के अनुसार दबाव और दंड की यातना, कठोर दुर्गम भूमि, आघात तथा नए देश आदि चुनौतियों से मनुष्य में प्रतिक्रिया की शक्ति पैदा होती है। इन्हीं चुनौतियों में क्रमशः सफल उत्तर देने की प्रवृत्ति को 'विकास' कहा है। इसी तरह की अवधारणाएं उन्होंने सभ्यता के विकास और पतन, संघटन और विघटन, एकता की प्रवृत्ति आदि पर पेश की हैं। उनकी यह अवधारणा भी है कि, "समस्त विश्व का एकीकरण धर्मों का समन्वय और आर्थिक विषमताओं का निराकरण इतिहास की प्रमुख प्रवृत्तियां है।"[102] उनके मतानुसार, "इतिहास सभ्यताओं का होता है, यह कथन सर्वथा सत्य है।"[103]

कार्ल मार्क्स :

आधुनिक यूरोपीय चिंतन में भौतिकवाद का आरम्भ सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में यांत्रिक परमाणुवाद तथा परीक्षणात्मक पद्धति के प्रसार के फलस्वरूप हुआ । विन्ची और गेलिलियो ने परीक्षणात्मक अध्ययन का प्रारम्भ किया और देकार्त तथा बेकन ने चिंतन जगत में इसका प्रयोग किया। 19 वीं शताब्दी में यूरोप के चिन्तन जगत में आर्थिक-तत्वों के अध्ययन में तेजी आई। भौतिकवाद को सर्वोत्तम तथा सबसे उन्नत वैज्ञानिक रूप देने का श्रेय मार्क्स को जाता है। इनपर फ्रेंच राजनीतिक क्रांति, अंग्रेजी औद्योगिक क्रांति और जर्मन बौद्धिक क्रांति का गहरा प्रभाव पड़ा। मार्क्स ने आर्नोल्ड रुज और बाखहोफर के प्रभाव से हीगल के द्वंद्वात्मक सिद्धांत की नवीन परिभाषा प्रस्तुत की । मार्क्स का भौतिकवाद सम्बंधित सिद्धांत निम्न है-

यथार्थवाद- किसी भी वस्तु तथा तथ्य का अस्तित्व उससे सम्बंधित अनुभूति और चेतना पर आश्रित नहीं होता बल्कि उसकी अपनी एक स्वतंत्र सत्ता होती है।

द्वंद्ववाद- मार्क्स ने हीगल के द्वंद्ववाद को ग्रहण तो किया लेकिन उसके आशय को बिल्कुल ही बदल दिया। उनका आशय है कि भाव जगत से पृथक कोई अस्तित्व नहीं रखते बल्कि वे तो भौतिक-जगत की छाया से उत्पन्न होते हैं।

नियतिवाद- संसार में घटित घटनाओं की गतिविधि नियमों के अनुकूल चलती हैं। इन नियमों को समझ लेने से उन गतिविधियों के आगामी रूप की खोज की जा सकती है।

प्रगतिशील विकासवाद- प्रत्येक गुणात्मक बदलाव मात्रात्मक बदलाव का अनुसरण करता है । इस सिद्धांत को 'एमरजेंस का सिद्धांत' कहते हैं।

कालवाद- सारा जगत परिवर्तनशील है। काल परिवर्तन का पैमाना है। भाव व विचार भी परिस्थितियों के हिसाब से बदलते रहते हैं। सभी वस्तुओं का स्वरूप ऐतिहासिक है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद- समाज में परिवर्तन तथा राजनीतिक क्रांतियाँ आदमी के दिमाग की उपज मात्र नहीं हैं बल्कि उत्पादन और वितरण की प्रक्रिया में बदलाव से पैदा होती हैं।

इतिहास की भौतिक व्याख्या करते हुए मार्क्स लिखते हैं, "मनुष्य जब उत्पादन की प्रक्रिया में संलग्न होते हैं तो उनके कुछ निश्चित सम्बन्ध बन जाते हैं जो अनिवार्य और उनकी इच्छा से स्वतन्त्र होते हैं। ये उत्पादन के सम्बन्ध उत्पादन की भौतिक शक्तियों के विकास के स्तर के अनुरूप होते हैं। इन उत्पादन के संबंधों के समूह से समाज का आर्थिक ढ़ांचा बनता है। यही वह आधारशिला है जिस पर वैधानिक और राजनीतिक प्रसाद खड़े होते हैं और जिनके अनुरूप सामाजिक चेतना का विकास होता है। भौतिक जीवन में उत्पादन की विधि जीवन की सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक प्रक्रियाओं की निर्णायक होती है। अपने विकास के एक निश्चित स्तर पर पहुँच कर उत्पादन की भौतिक शक्तियां उत्पादन के संबंधों से टकराने लगती हैं अर्थात कानूनी शब्दावली में वे संपत्ति के संबंधों के विपरीत हो जाती हैं।.........साथ ही साथ पूंजीवादी समाज के गर्भ में उन उत्पादन की शक्तियों का विकास हो रहा है जो इस विरोध का समाधान करने की सामर्थ्य रखती हैं। यह सामाजिक निर्माण मानव-इतिहास के प्रागैतिहासिक युग का अंतिम अध्ययन है।"[104] मार्क्स के अनुसार, "सामाजिक जीवन और सामाजिक व्यवस्था का निर्माण आर्थिक कारणों के परिणामस्वरूप होता है।"[105] प्रत्येक दशा में एक अन्तर्विरोध छिपा होता है। एक वर्ग अपने परिश्रम से उत्पादन करता है तो दूसरा वर्ग साधन सम्पन्नता के कारण उसके अतिरिक्त फल का उपभोग करता है, "सभी ऐतिहासिक समाज इस श्रमिक और धनिक वर्ग के द्वैत को अपने अंदर लिए होने के कारण साधनों के विकसित होने पर संघर्ष और क्रांति से नष्ट हुए हैं।"[106] उनके अनुसार, 'अब तक के सभी समाजों का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है।'

पहली भारतीय कृति जिसे ऐतिहासिक माना जा सकता है वह बाणभट्ट की 'हर्षचरित' है। यह कृति ऐतिहासिक पृष्ठभूमि या मूल सामग्री पर आधारित 'रोमांस' का मॉडल है। 'हर्षचरित' सही अर्थों में इतिहास नहीं है। यह एक ऐसी शैली थी जिससे लेखक स्वयं अवगत नहीं थे। यह एक ऐतिहासिक गद्यात्मक रोमांस है जो संस्कृत काव्य के अंतर्गत काव्य की कोटि से सम्बंधित है। माना कि हर्षचरित की रचना सामान्य अर्थ में इतिहास लेखन के प्रयोजन से नहीं हुई परन्तु निश्चित रूप से ऐतिहासिक तथ्य इसका आधार हैं। भले ही बाणभट्ट किसी भी ऐतिहासिक पद्धति से अवगत नहीं थे परन्तु फिर भी उन्होंने जो प्रस्तुत किया उनका आधार कहीं ना कहीं ऐतिहासिक तथ्य थे। इनके पश्चात् कल्हण द्वारा रचित 'राजतरंगिनी' आती है। यह पौराणिक काल से इसके रचना काल(1148-49) तक कश्मीर के राजाओं का अनवरत इतिहास प्रस्तुत करती है। राजतरंगिनी अबतक उपलब्ध एकमात्र ऐसी कृति है जिसे ऐतिहासिक माना जा सकता है। कल्हण एक सच्चे इतिहासकार की छवि के साथ अभिगम की दृष्टि से सर्वाधिक निकटता दर्शाते हैं। सामान्यतः प्राचीन भारतीय लेखक अतीत की घटनाओं को पूरी तरह मानवीय मानने या उन्हें किसी तिथिक्रम या कालक्रम व्यवस्था में देखने के अभ्यस्त नहीं थे। इन दोनों अर्थों में कल्हण खरे उतरे हैं। कल्हण द्वारा रचित ग्रन्थ हिंदू जीवन दृष्टि के आधारभूत सिद्धांतों का इतिहास के संदर्भ में प्रयोग उपदेशात्मक प्रयोजन की उनकी संकल्पना से निकटता से सम्बद्ध था। ऐसा प्रतीत होता है कि धर्म, पुण्य, पाप, नियति, कर्म और पुनर्जन्म, दैवी प्रतिकार और दैवी आनंद आदि इन सभी अवधारणाओं से मिलकर उन्हें इतिहास का एक पूर्वनिश्चित दर्शन प्रदान किया।

कल्हण के पश्चात मध्यकालीन भारत में दरबारी ऐतिहासिक कृतियों की रचना की गई। इस काल खंड में लगभग सभी कृतियों की रचना दरबार में शासक के आदेश पर हुई जिनका आधार ऐतिहासिक तथ्य थे परन्तु यदाकदा शासक का भी अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन किया गया। इन सबके पश्चात आधुनिक भारतीय इतिहास लेख आता है जिसमें राष्ट्रवादी, भारतीय मार्क्सवाद, सबल्टर्न इतिहास लेखन मुख्यतः शामिल

हैं। आर.जी. भंडारकर, रोमेशचंद्र दत्त, के.पी. जायसवाल प्रमुख राष्ट्रवादी इतिहास लेखक हैं व डी.डी. कौशाम्बी, आर.एस. शर्मा, रोमिला थापर आदि मुख्य मार्क्सवादी इतिहासकार हैं। इनके अलावा रणजीत गुहा, डेविड अर्नाल्ड, ज्ञान पांडे आदि मुख्य सबल्टर्न इतिहासकार रहे हैं जिन्होंने इतिहास की विभिन्न विचारधाराओं को आगे बढ़ाया।

इस अध्याय को तीन भागों (इतिहास, साहित्येतिहास और इतिहास-दर्शन) में बांटकर लेखन कार्य किया है। प्रथम भाग में इतिहास के शाब्दिक अर्थ, परिभाषा और इसकी जानकारी के लिए जरुरी तथ्यों को उल्लेखित किया है। इतिहास सम्बन्धी जिन-जिन विद्वानों के मत हैं सबका विवेचन किया है। इतिहास के प्रति पाश्चात्य और भारतीय दृष्टिकोण को भी अलग-अलग आलोचकों के मतों के आधार पर दिखाने का प्रयास किया गया है। साहित्येतिहास की परिभाषा तथा मतभेदों का जिक्र अध्याय में है। हिंदी साहित्य इतिहास की परम्परा में महत्वपूर्ण ग्रन्थों तथा साहित्येतिहासकारों का विस्तृत अध्ययन भी किया है। तासी से लेकर आगे आलोचनात्मक इतिहास तक की परम्परा का उल्लेख भी इस अध्याय में है। इतिहास-दर्शन की परिभाषा, अर्थ और स्वरूप और इतिहास-दर्शन और इतिहास के आपसी सम्बन्ध को भी स्पष्ट किया है। इतिहास-दर्शन को लेकर दार्शनिकों (विको, कांट, हीगल,मार्क्स) के मतों की व्याख्या भी इस अध्याय में की है।

संदर्भ :

1. गुप्ता, मानिकलाल; इतिहास, स्वरूप,अवधारणाएँ एवं उपयोगिता; अटलांटिक वॉल्यूम 2002, पृ. - 68-69

2. श्रीधरन, ई.; इतिहास लेख; ओरियंटल ब्लैक स्वान प्राइवेट लि. भारत; पृ.-1

3. कार, ई. एच.; व्हाट इज हिस्ट्री; ट्रिनिटी प्रेस नयी दिल्ली; 1976; पृ.-45

4. राउज, ए. एल.; द यूज़ ऑफ़ हिस्ट्री; रॉउटलेज लाइब्रेरी लन्दन; पृ.-107

5. कोलिंगवुड, आर. जी.; द आइडिया ऑफ़ हिस्ट्री; ऑक्सफ़ोर्ड यू. प्रेस, 1961; पृ.-193

6. घोषाल, यू. एन.; स्टडीज इन इंडियन हिस्ट्री एंड कल्चर; ओरियंट लोंगमंस इंडिया; पृ.-68

7. कोशाम्बी, डी. डी.; अन इटरोडक्शन टू द स्टडी ऑफ़ इंडियन हिस्ट्री; पोपुलर प्रकाशन मुंबई; 1956; पृ.- 41

8. कार, ई. एच.; वाटॅ इज हिस्ट्री; ट्रिनिटी प्रेस नयी दिल्ली; 1976; पृ.- 69-70

9. थाम्पसन; हिस्ट्री ऑफ़ हिस्टोरिकल थींकिग; मैकमिलन कंपनी, न्यूयॉर्क; 1942; पृ.-88

10. गुप्ता, मानिकलाल; इतिहास,स्वरूप,अवधारणायें एवं उपयोगिता; पृ.-68-69

11. कार, ई. एच.; व्हाट इज हिस्ट्री; ट्रिनिटी प्रेस नयी दिल्ली; 1976; पृ.-28

12. बर्कहार्ड, जे.; जजमेंट ऑन हिस्ट्री एंड ऑन हिस्टोरियन्स; जॉर्ज एलन एंड अन्विन लिमिटेड, लन्दन; 1959; पृ.-106

13. गूच, जी.पी.; हिस्ट्री एण्ड द हिस्टोरियन्स इन द 19th सेन्चुरी; लोंगमंस, ग्रीन एंड कम्पनी, लन्दन; पृ.-105

14. वेस्टाफाल, जेम्स; हिस्ट्री ऑफ़ हिस्टारिकल राइटिंग, भाग-2; मैकमिलन कंपनी, न्यूयॉर्क; 1942; पृ.-193

15. गूच ,जी. पी.; हिस्ट्री एंड द हिस्टोरिचन इन द 19th सेन्चुरी; लोंगमंस, ग्रीन एंड कम्पनी, लन्दन; पृ.- 146

16. बरी ,जे.बी.; डार्विनिज्म एण्ड हिस्ट्री; कैम्ब्रिज यू. प्रेस कैम्ब्रिज; पृ.- 246

17. कोलिंगवुड ,आर. जी.;द आइडिया ऑफ़ हिस्ट्री; ऑक्सफ़ोर्ड यू. प्रेस, 1961; पृ.- 296

18. टायनबी ,अर्नोल्ड जें.; ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री ,भाग-4; ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ऑक्सफ़ोर्ड;1946; पृ.-718

19. कोलिंगवुड ,आर. जी.; द आइडिया ऑफ़ हिस्ट्री; ऑक्सफ़ोर्ड यू. प्रेस, 1961; पृ.-200

20. ट्यानबी, ए.; ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री ,भाग-4; ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ऑक्सफ़ोर्ड;1946; पृ.-35

21. श्रीधरन, ई.; इतिहास लेख; ओरियंटल ब्लैक स्वान प्राइवेट लि. भारत; पृ.- 01

22. मार्क्स एवं एंगेल्स; लेटर टू डेनियल कोरेस्पोंडेंस, 1846-95 ई.; पृ.- 510

23. रेनियर ,जी. जे.; हिस्ट्री इट्स पर्पज एण्ड मैथेड; एलन एंड अन्विन लिमिटेड; लन्दन; 1950; पृ.-58

24. बर्कहर्ड ,जे.; जजमेंट ऑफ़ हिस्ट्री एंड ऑन हिस्टोरियांस; जॉर्ज एलन एंड अन्विन लिमिटेड, लन्दन; 1959; पृ.-149

25. टायनबी ,अर्नोल्ड जें.; ए स्टडी ऑफ़ हिस्ट्री ,भाग-4; ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ऑक्सफ़ोर्ड;1946; पृ.-96

26. डासन, क्रिस्टोफर; प्रोग्रेस एंड रिलिजन; अन हिस्टोरिकल इन्कुआरी; कैथोलिक यूनिवर्सिटी प्रेस, अमेरिका; 2001; पृ.-111-119

27. फिलिप; हिस्टोरियंस ऑफ़ इंडिया, पाकिस्तान एंड सीलोन; ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफ़ोर्ड; 1961; पृ.-169

28. कौशाम्बी, डी. डी.; एन इंटरोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ़ इंडियन हिस्ट्री; पोपुलर प्रकाशन बोम्बे; 1956; पृ.-44

29. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; नागरीप्रचारिणी सभा काशी; पृ.-1

30. क्रोचे, बी.एन.; हिस्ट्री एज दी स्टोरी ऑफ़ लिबरटी, लंदन, 1949; पृ.-19

31. वेलेक, रेने, वारेन, आस्टिन; थ्योरी आफ लिटरेचर, लंदन; पृ.-335

32. वेलेक, रेने, वारेन, आस्टिन; सहित्य सिंद्धात; लोकभारती प्रकाशन नयी दिल्ली; पृ.-335

33. शर्मा, नलिन विलोचन; साहित्य का इतिहास-दर्शन; बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद, पटना; पृ.-34

34. पाण्डेय, डॉ. रामखेलावन; हिंदी साहित्य का नया इतिहास; पटना; 1969; पृ.-15

35. शर्मा, नलिन विमोचन; साहित्य का इतिहास-दर्शन; बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद, पटना; पृ.-1

36. सिंह, डॉ. शम्भु; हिंदी साहित्य की सामाजिक भूमिका; प्राककथन

37. वार्ष्णेय, डॉ. लक्ष्मीसागर; हिन्दुई साहित्य का इतिहास; हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहबाद; 1953; पृ. 6-7

38. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; कमल प्रकाशन; नई दिल्ली ; पृ.-301

39. श्रीवास्तव, डॉ. मुरलीधर; हिंदी के यूरोपीय विद्वानः व्यक्तित्व और कृतित्व; पटना ; पृ.-75

40. सेंगर, शिव सिंह; शिव सिंह सरोज; हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग; भूमिकाः पृ.-3

41. शुक्ल, महेश दत्त; भाषा काव्य-संग्रह; लखनऊ; पृ.-128

42. डॉ. शिवकुमार; हिंदी साहित्य का इतिहास-दर्शन; वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली; पृ.-155

43. शुक्ल, महेश दत्त; भाषा काव्य-संग्रह, लखनऊ; 1873; पृ.-125

44. वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर (अनु.); हिंदुई साहित्य का इतिहास; हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहबाद, 1993; प्रकाशकीय

45. शर्मा, नलिन विलोचन; साहित्य का इतिहास-दर्शन; बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद, पटना; पृ.-77

46. वही; पृ.-77

47. वर्मा, डॉ. रामकुमार; हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, इलाहाबाद 1964; पृ. 4

48. गुप्त, किशोरीलाल (अनु.); हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास; वाराणसी; 1957; प्रस्तावनाः पृ. 53

49. शर्मा, नलिन विलोचन; साहित्य का इतिहास-दर्शन; बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद, पटना; पृ.-78

50. गुप्त, किशोरीलाल (अनु.); हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास; वाराणसी; 1957; पृ.-40

51. श्रीवास्तव, डॉ. मुरलीधर; हिंदी के यूरोपीयन विद्वानः व्यक्तिव और कृतित्व; बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी पटना; पृ.-121

52. गुप्त, किशोरीलाल (अनु); हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास; वाराणसी; पृ.- 14

53. शर्मा, रामकिशोर; हिंदी साहित्य का समग्र इतिहास; लोकभारती प्रकाशन नयी दिल्ली; पृ.-9

54. मिश्रबंधु; मिश्रबंधुविनोद, प्रथम भाग; लखनऊ;1913; भूमिका: पृ.-12

55. वही; पृ.-16

56. राजे, डॉ. सुमन; साहित्येतिहास: संरचना और स्वरूप; कानपुर; 1975; पृ.-311

57. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; कमल प्रकाशन नयी दिल्ली; पृ.-7

58. दास, बाबू श्यामसुंदर; मेरी आत्मकहानी; इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग; प्रथम संस्करण;पृ.- 172

59. गुप्त, गणपति चंद्र; हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, प्रथम खंड; लोकभारती प्रकाशन; पृ.-33

60. वर्मा, डॉ. रामकुमार; हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास; इलाहाबाद 1964; पृ.-41

61. वही; पृ.-8

62. परीख, द्वारकादास; दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता; अशोक प्रिंटरी-रावपुरा, बडौदा; पृ.- I

63. बनर्जी, एन.वी.; कांसेप्ट ऑफ़ फिलोसफी; यूनिवर्सिटी ऑफ़ हवाई प्रेस; पृ.-51

64. वही; पृ.-40

65. कोलिंगवुड, आर.जी.; आइडिया ऑफ़ हिस्ट्री; ऑक्सफ़ोर्ड यू. प्रेस, आक्सफोर्ड; 1949; पृ.-1

66. हीगल, डब्लयु. एफ.; दी फिलोसफी ऑफ़ हिस्ट्री; न्यूयार्क;1956; पृ.-8

67. वाल्श, डब्लयु. एच.; एन इन्ट्रोडक्शन टू फिलोसफी ऑफ़ हिस्ट्री; लंदन; 1967; पृ.-12

68. कोलिंगवुड, आर.जी.; आइडिया ऑफ़ हिस्ट्री; ऑक्सफ़ोर्ड यू. प्रेस, आक्सफोर्ड; 1961; पृ.-1

69. वही; पृ.-1

70. अली, शेक; हिस्ट्री इट्स थ्योरी एंड मेथड; 1978; पृ-48

71. कोलिंगवुड, आर. जी; आइडिया ऑफ़ हिस्ट्री; ऑक्सफ़ोर्ड यू. प्रेस, आक्सफोर्ड; 1961; पृ.-1

72. वही; पृ.-1

73. पाण्डेय, गोविन्दचंद्र; इतिहासः स्वरूप एवं सिंद्धात; जयपुर, 1973; पृ.-216

74. वाल्श, डब्लू.एच.; एन इन्टरोडक्शन टू द फिलोसॉफी ऑफ़ हिस्ट्री; 1967; पृ.-117

75. पाण्डेय, गोविन्दचंद्र; इतिहासः स्वरूप एवं सिद्धांत; जयपुर, 1973; पृ.- 195

76. कोलिगवुड, आर. जी.; आइडिया ऑफ़ हिस्ट्री; ऑक्सफ़ोर्ड यू. प्रेस, आक्सफोर्ड; 1961; पृ.- 45

77. वहीं; पृ.- 4-5

78. पाण्डेय, गोविन्दचंद्र; इतिहासः स्वरूप एवं सिद्धांत; जयपुर; 1973; पृ.- 268

79. वहीं; पृ.- 273

80. वहीं; पृ.- 273

81. कोलिगवुड, आर. जी.; आइडिया ऑफ़ हिस्ट्री; ऑक्सफ़ोर्ड यू. प्रेस, आक्सफोर्ड; 1961; पृ.- 10

82. वाल्श, डब्लयू.एच.; अन इन्टरोडक्शन ऑफ़ दी फिलोसॉफी ऑफ़ हिस्ट्री; 1961; पृ.-15

83. पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र; इतिहासः स्वरूप एवं सिद्धांत; जयपुर, 1973; पृ.- 125

84. वहीं; पृ.-125

85. गोयल, धमेन्द्र;फिलोसफी ऑफ़ हिस्ट्री, दिल्ली; प्रथम संस्करण; पृ.-1

86. पाइपर, जोसेफ; दी एंड ऑफ़ टाइम; प्रथम संस्करण; पृ.- 13

87. विजेरी, एल्बन जी.; इंटरप्रेटेशन ऑफ़ हिस्ट्री; राउटलेज पब्लिकेशन इंग्लैंड; 1961; पृ.- 231

88. पाइपर, जोसेफ; दि एंड ऑफ़ टाइम; पेन्थेन बुक्स पब्लिकेशन, न्यूयॉर्क; 1961; पृ.- 65

89. श्लेगल, फ्रेडरिक वान; दि फिलोसफी ऑफ़ हिस्ट्री; द्वितीय संस्करण; भूमिका

90. क्रोचे, बी.; हिस्ट्री एज दि स्टोरी ऑफ़ लिबरटी; लन्दन 1949; पृ.- 86

91. रेनियर, जी.जे.; हिस्ट्री: इट्स पर्पज एंड मैथड; राउटलेज पब्लिकेशन इंग्लैंड, 1950; पृ.- 206

92. गाटस्चाक, लुईस; अंडरस्टैंडिंग हिस्ट्री; यूनिवर्सिटी ऑफ़ शिकागो,न्यूयॉर्क; 1958; पृ.-10

93. पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र; इतिहासः स्वरूप एवं सिद्धांत; जयपुर, 1973; पृ.-7

94. डॉ. बुद्धप्रकाश; इतिहास-दर्शन; सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग; प्रथम संस्करण 1962; पृ.-155

95. कोलिंगवुड, आर.जी.; एस्से इन दि फिलोसोफी ऑफ़ हिस्ट्री; यूनिवर्सिटी ऑफ़ टेक्सास प्रेस; 1965; पृ.-13

96. डॉ. बुद्धप्रकाश; इतिहास-दर्शन; सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग; प्रथम संस्करण 1962; पृ.-156

97. वाल्श, डब्लयू.एच.; अन इन्टरोडक्शन ऑफ़ दी फिलोसॉफी ऑफ़ हिस्ट्री; हचिंगसन यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी लन्दन; 1961; पृ.-218

98. डॉ. बुद्धप्रकाश; इतिहास-दर्शन; सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग; प्रथम संस्करण 1962; पृ.-170

99. वही; पृ.-170

100. वही; पृ.-172

101. वही; पृ.-305

102. वही; पृ.319

103. वाल्श, डब्लयू.एच.; अन इन्टरोडक्शन ऑफ़ दी फिलोसॉफी ऑफ़ हिस्ट्री; हचिंगसन यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी लन्दन; 1961; पृ.-160

104. मार्क्स, कार्ल; ए कंट्रीब्यूशन टू दि क्रिटिक ऑफ़ पोलिटिकल इकोनोमी; प्रोग्रेस पब्लिशर्स मास्को; पृ.- 11-13

105. गार्डिनर, पी.; दि थ्योरी ऑफ़ हिस्ट्री; एलन एंड अन्विन लन्दन; 1959; पृ.-130-131

106. पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र; इतिहासः स्वरूप एवं सिद्धांत; जयपुर, 1973; पृ.-223